संस्कृत काव्य परम्परा

डॉ० तुलसीदास परौहा

संस्कृत-काव्य-परम्परा

लेखक

डॉ0 तुलसीदास परौहा

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय,

चित्रकूट उ0प्र0 210204

राका प्रकाशन

इलाहाबाद

ISBN : 978-93-82182-07-8

प्रकाशक
राका प्रकाशन
40ए, मोतीलाल नेहरू रोड
इलाहाबाद–2
बिक्री केन्द्र :
राका बुक शॉप
25ए, महात्मा गांधी मार्ग
(कॉफी हाउस कैम्पस)
सिविल लाइन्स, इलाहाबाद–1
*
कॉपीराइट : लेखक
*
मूल्य : 250/– रुपये
*
प्रथम संस्करण : 2012
*
मुद्रक : भार्गव ऑफसेट
बाई का बाग
इलाहाबाद

दो शब्द

विश्व की महान् बौद्धिक सम्पदा से आढ्य संस्कृत साहित्य रचना की दृष्टि से जितना प्राचीन है, उतना ही उपयोगिता एवं प्रासंगिकता की दृष्टि से अधुनातन भी है। महान् मूल्यों, गहनतम ज्ञान, तथा सरलतम उपदेशों वाले इस साहित्य की रचनाधर्मिता में निरन्तर विकास होता चला आ रहा है। महाकवियों चिन्तक मनीषियो ने युगानुकूल काव्य रचना करके समाज का पथप्रदर्शन किया है।

'संस्कृत काव्य परम्परा' नामक इस ग्रन्थ में विश्व प्रसिद्ध महाकवियों एवं उनकी रचनाओं का संक्षेप में प्रामाणिक विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ चित्रकूटस्थ दो विश्वविद्यालयों के छात्रों को लक्ष्य रखकर लिखा गया है क्योकि 'संस्कृत काव्य परम्परा' नाम से एक प्रश्न पत्र महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, जिला–सतना (म0प्र0) के एम0ए0 संस्कृत साहित्य में तथा जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ0प्र0) के बी0ए0 संस्कृत साहित्य में निर्धारित है।

अस्तु यह ग्रन्थ मैं अपने विशिष्ट कला सम्पन्न प्रतिभावान् विकलांग छात्र–छात्राओं को समर्पित करता हूँ। आशा है यह ग्रन्थ उनके लिए लाभदायक होगा।

इस ग्रन्थ के लेखन में जिन गुरुकल्प संस्कृत साहित्य के इतिहास लेखकों का, गुरुजनों का तथा विद्वान मित्रों का स्नेहिल निर्देशन, विषयवस्तु एवं आशीर्वाद प्राप्त हुआ है, उन सभी को मैं प्रणाम करता हूँ तथा उनका आधमर्ण्य स्वीकार करता हूँ।

विनयावनत

डॉ0 तुलसीदास परौहा

भूमिका

ऋषियों से लेकर आधुनिक संस्कृत मनीषियों ने विश्वमंगल कामनागर्भित वसुधैवकुटुम्बकम् की जिस उदात्त विचारधारा को स्वकीय काव्यों का प्रमुख आधार बनाकर मानव मूल्यों एवं लोकमंगलाचारों को धीरोदात्त नायक चरित ब्याज से कान्तासम्मित उपदिष्ट किया है, वह सब कुछ संस्कृत साहित्य के इतिहास का अध्ययन सापेक्ष विषय है। अतएव महाकवियों की उदात्त रचनाओं का संक्षिप्त किन्तु रोचक एवं प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत अध्ययन सामग्री के माध्यम से प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

उद्देश्य :

छात्रों को संक्षेप मे सारगर्भित रीति से संस्कृत काव्य परम्परा के प्रमुख घटक रामायण, महाभारत, रघुवंश, किरात आदि महान् काव्य, वासवदत्ता, कादम्बरी आदि गद्यकाव्य, शाकुन्तलम्, वेणीसंहार, मृच्छकटिक आदि नाट्यकाव्य मेघदूतम् जैसे खण्डकाव्य, नलचम्पू, रामायण चम्पू प्रभृति चम्पूकाव्य, एवं मुक्तक की विधाओं से परिचित कराना प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है।

विषय सूची

- संस्कृत नाटकों का उद्भव एवं विकास /
- संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति /
- संस्कृत नाटकों का विकास /
- महाकविशूद्रक के नाटक /
- शूद्रक की नाट्यकला /
- कालिदास के नाटक /
- महाकवि कालिदास की नाट्यकला /
- महाकवि हर्ष की नाट्यरचनायें /
- हर्ष की नाट्यकला /
- महाकवि भट्टनारायण के नाटक/
- भट्टनारायाण की नाट्यकला /
- महाकवि भवभूति के नाटक /
- भवभूति की नाट्यकला /
- गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास /
- वैदिक एवं पौराणिक गद्य /
- साहित्यिक गद्य–आख्यान, आख्यायिका, बृहत्कथा /
- प्रमुख गद्यकाव्यः परिचय एवं वैशिष्ट्य /
- दशकुमार चरित /
- दण्डी की शैली एवं काव्य सौन्दर्य /
- दण्डिन : पदलालित्यम् /
- सुबन्धुकृत वासवदता /
- सुबन्धु की शैली एवं काव्य.वैशिष्ट्य /
- हर्षचरित /
- कादम्बरी /
- बाण की शैली एवं काव्य सौन्दर्य /
- बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् /
- चम्पूकाव्य : उत्पत्ति एवं विकास /
- चम्पूकाव्य की परिभाषा /

- चम्पू काव्य का विकास /
- त्रिविक्रम भट्ट : जीवनवृत्त एवं कृतित्व /
- त्रिविक्रमभट्ट की शैली नलचम्पू /
- जीवन्धरचम्पू /
- यशस्तिलकचम्पू /
- रामायणचम्पू /
- भारतचम्पू /
- वरदाम्बिका परिणय चम्पू /
- अन्यचम्पूकाव्य 13वीं से 12वीं शताब्दी /
- महाकाव्य : उद्भव एवं विकास /
- रामायण /
- महाभारत /
- महाकाव्य का लक्षण /
- महाकाव्यों की संक्षित कथा वस्तु एवं समीक्षा /
- कुमारसम्भव महाकाव्य /
- रघुवंश महाकाव्य /
- कालिदास की शैली एवं काव्य सौन्दर्य /
- उपमा कालिदासस्य /
- बुद्धचरित महाकाव्य /
- सौन्दरनन्दमहाकाव्य /
- अश्वघोष की शैली एवं काव्य वैशिष्ट्य /
- किरातार्जुनीय महाकाव्य /
- भारवि की शैली एवं अर्थगौरव /
- शिशुपालबध महाकाव्य /
- माघ की शैली /
- नैषधीयचरित महाकाव्य /
- श्रीहर्ष की शैली एवं काव्य सौन्दर्य /
- भट्टिकाव्य /
- भट्टि की शैली एवं काव्य सौन्दर्य /
- जानकीहरण महाकाव्य /
- हरविजय महाकाव्य /
- प्रमुख कवि एवं काव्य सूची/

महाकाव्य : उद्‌भव एवं विकास

रामायण

संक्षिप्त परिचय

रामायण महर्षि वाल्मीकि की कृति है। इसमें रामकथा आद्योपान्त वर्णित है। इसमें मूलतः छः काण्ड हैं– बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, एवं युद्धकाण्ड। इसमें लगभग 24 सहस्र श्लोक हैं, अतः इसे 'चतुर्विंशति–साहस्री संहिता भी कहते हैं। यह मुख्यतः अनुष्टुप् श्लोकों में है। गायत्री मंत्र में 24 वर्ण होते हैं, अतः यह मान्यता है कि उसको आधार मानकर 24 हजार श्लोक बनाये गये हैं और प्रत्येक एक हजार श्लोक के बाद गायत्री के नये वर्ण से नया श्लोक प्रारम्भ होता है। रामचरित का सर्वांगपूर्ण वर्णन होने के कारण यह धार्मिक–ग्रन्थ एवं आचारसंहिता माना जाता है। यह परकालीन कवियों, नाटककारों और गद्य लेखकों का उपजीव्य (आधार) काव्य माना जाता है। भाव, भाषा, शैली, परिष्कार और काव्यत्व के कारण रामायण का स्थान भारतीय काव्यों में सर्वोच्च माना जाता है।

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।
(रामायण, बालकांड 2–36–7)

रामायण का समय :

रामायण के समय निर्धारण में कुछ मौलिक कठिनाइयाँ हैं। जिसमें आज तक यह पुष्ट रूप में नहीं कहा जा सकता है कि

रामायण की रचना कब हुई थी? नीचे जितने मत प्रस्तुत किये जा रहें हैं, वे अधिकांशतः अनुमान पर निर्भर हैं और वे पूर्व–सीमा न बताकर अपर सीमा का संकेत करते हैं। संक्षेप में प्रमुख कठिनाइयाँ ये हैं–

1. रामायण में रचना काल का अनिर्देश।
2. पाश्चात्त्य विद्वानों द्वारा राम की ऐतिहासिकता पर सन्देह।
3. पुष्ट अन्तरंग और बाह्य प्रमाणों का अभाव।
4. रामायण वैदिक काल के बाद की रचना है, परन्तु वैदिक काल स्वयं अनिर्धारित है। वैदिक साहित्य के रचना काल के विषय में सैकड़ों नहीं, सहस्रों और लाखों वर्षो तक का मतभेद है।

भारतीय और पाश्चात्त्य विद्वानों ने इस विषय पर पर्याप्त विचार विनिमय किया है और सैकड़ों निबन्ध प्रस्तुत किये हैं। उनका निष्कर्ष निम्नलिखित हैं–

1. **वरदाचार्य**[1]– राम त्रेतायुग में हुए। त्रेतायुग ईसा से 8 लाख 37 हजार 1 सौ वर्ष पूर्व समाप्त हुआ था। वाल्मीकि राम के समकालीन थे। अतः रामायण की रचना का समय पूर्वोक्त है।
2. **गोरेसियो**[2]– 1200 ई0पू0।
3. **श्लेगल**[3]– 1100 ई0पू0
4. **याकोबी**[4]– 800 ई0पू0 से 500 ई0पू0।
5. **कामिल बुल्के**[5]– 600 ई0पू0।
6. **मैकडानल**[6]– 500ईपू0, संशोधन 200 ई0पू0।
7. **काशीप्रसाद जायसवाल**[7]– 500 ई0पू0, संशोधन 200 ई0पू0।
8. **जयचन्द्र विद्यालंकार**[8]– 500 ई0पू0, संशोधन 200 ई0पू0।
9. **विन्टरनित्स**[9]– 300 ई0पू0।

उपर्युक्त विवेचन में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है–

क. रामायण में बुद्ध का उल्लेख न होना तथा बौद्ध धर्म के प्रभाव का अभाव।

ख. वैदिक काल का परवर्ती होना।

ग. कोसल की राजधानी अयोध्या न कि साकेत।

घ. पाटलिपुत्र का उल्लेख न होना।

ड. श्रावस्ती का राजधानी न होना।

च. विशाला और मिथिला का स्वतंत्र राज्य के रूप में उल्लेख।

छ. यूनानी प्रभाव का अभाव।

ज. मूल रामायण में राम को अवतार न मानना।

झ. 500 ई0पू0 की संस्कृति और सभ्यता के साम्य।

संक्षेप में इन विषयों का प्रतिपादन इस प्रकार है–

1. रामायण में बुद्ध धर्म का अभाव– मूल रामायण में बौद्ध धर्म का प्रभाव सर्वथा अदृश्य है। एक स्थान पर बुद्ध का नाम आया है और उन्हें चोर एवं नास्तिक कहा गया है। सभी विद्वान इसे प्रक्षिप्त मानते हैं। यह श्लोक बुद्ध और बौद्ध धर्म की निन्दा के लिये बाद में जोड़ा गया है। विन्टरनित्स भी रामायण में बौद्ध धर्म के प्रभाव का सर्वथा अभाव मानते हैं।

उपर्युक्त बुद्ध विषयक श्लोक सभी प्रतियों में नहीं पाया जाता है। अतः मूल रामायण बुद्ध (जन्म 563 ई0पू0, निर्वाण 483 ई0पू0) से पूर्ववर्ती है।

2. रामायण और महाभारत वैदिक साहित्य के बाद की रचनायें हैं, अतः इनकी पूर्व सीमा वैदिक काल की समाप्ति है।

3. रामायण में कोसल राज्य की राजधानी अयोध्या है। बौद्ध और जैन ग्रन्थों में अयोध्या का 'साकेत' नाम से निर्देश है। अतः रामायण का रचनाकाल महावीर और बुद्ध से पूर्ववर्ती है।

4. रामायण (बालकांड, सर्ग 31) में उल्लेख है कि राम गंगा और सोन के संगम के पास से जाते हैं, परन्तु दोनों के संगम पर स्थित वर्तमान पाटलिपुत्र (पटना) का उल्लेख नहीं है। बिम्बसार के

पुत्र अजातशत्रु (ई0पू0 491 से 459 तक) ने 'पाटलि' नामक ग्राम के चारों ओर सुरक्षार्थ एक प्राचीर (परकोटा) बनवाया था। यही ग्राम बाद में पाटिलपुत्र नगर हुआ। अतः रामायण की रचना 500ई0पू0 से पहले माननी चाहिये।

5. श्रावस्ती– राम के पुत्र लव ने अपनी राजधानी 'श्रावस्ती' में बनाई थी। बुद्धकालीन राजा प्रसेनजित् की राजधानी 'श्रावस्ती' थी। रामायण में कोसल की राजधानी अयोध्या ही है। अतः रामायण का बुद्ध से पूर्ववर्ती होना सिद्ध होता है।

6. विशाला और मिथिला– बुद्ध से पहले विशाला और मिथिला स्वतंत्र राज्य थे। बुद्ध के समय में दोनों एक होकर वैशाली राज्य हो गये थे। अंगुत्तर–निकाय में 16 गणराज्यों में वैशाली का उल्लेख वृजि नाम से है। रामायण में वैशाली का उल्लेख न होकर विशाला और मिथिला का पृथक उल्लेख है। विशाला के राजा 'सुमति' हैं और मिथिला के 'सीरध्वज जनक'। इससे सिद्ध होता है कि रामायण की रचना बुद्ध पूर्व काल में हुई थी।

7. यूनानी प्रभाव– रामायण में केवल 2 स्थानों पर यवन शब्द का प्रयोग है जिसके आधार पर डॉ0 वेबर ने रामायण पर यूनानी सभ्यता का प्रभाव सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। डॉ0 याकोबी और डॉ0 विन्टरनित्स ने उपर्युक्त दोनोंस्थलों को प्रक्षिप्त माना है और रामायण पर यूनानी प्रभाव का खण्डन किया है।[4] अतः रामायण का समय यूनानियों के भारत में आगमन (323 ई0पू0) से बहुत पूर्व मानना चाहिये।

8. राम का अवतार– मूल रामायण में राम को अवतार नहीं माना गया है। अवतार की भावना का उदय बुद्ध के बाद हुआ है। इतिहास साक्षी है कि बुद्ध की प्रतिमाओं से ही प्रतिमा पूजन का विकास हुआ। फारसी का 'बुत' (मूर्तिवाचक) शब्द 'बुद्ध' शब्द का ही अपभ्रंश है, जो स्पष्ट रूप से सूचित करता है कि मूर्ति पूजा का सम्बन्ध बुद्ध (बुद्ध मूर्ति पूजा) से रहा है। महाभाष्यकार पतंजलि (150ई0पू0) ने इसका इतिहास देते हुए बताया है कि मौर्य राजाओं ने राजकीय आय बढ़ाने के लिये मूर्ति पूजा की योजना प्रचलित की।

सुन्दर मूर्तियों की नक्काशी आदि की योजना भी उन्हीं की देन है। इससे सिद्ध होता है कि मूल रामायण बुद्ध के जन्म से पूर्व लिखी गयी थी।

9. रामायण का अधिकांश चित्रण, विशेषकर उसका सामाजिक चित्र, 5वीं शताब्दी ई0पू0 का है। उसमें हमें 5वीं शताब्दी ई0पू0 के भारतीय समाज के आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन का अच्छा चित्र मिलता है।

10. विन्टरनित्स ने यह सिद्ध किया है कि वर्तमान परिवर्धित रामायण प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में इस रूप में आ चुकी थी।

रामायण का सांस्कृतिक महत्व :

रामायण न केवल काव्य, महाकाव्य या वीर काव्य ही है। इसका सबसे बहुत अधिक महत्व है। यह आर्यो का आचार शास्त्र एवं धर्मशास्त्र है। यह मानव-जीवन का सर्वांगीण आदर्श प्रस्तुत करता है। यह धार्मिक दृष्टि से प्राचीन संस्कृति, आचार, सत्य, धर्म, व्रत-पालन, विविध यज्ञों का महत्व आदि का पूरा इतिहास प्रस्तुत करता है। सामाजिक दृष्टि से यह पति-पत्नी के सम्बन्ध, पिता-पुत्र के कर्तव्य, गुरू-शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, भाई का भाई के प्रति कर्तव्य, व्यक्ति का समाज के प्रति उत्तरदायित्व, आदर्श पिता-माता-पुत्र-भाई-पति एवं पत्नी का चित्रण, आदर्श गृहस्थ-जीवन की अभिव्यक्ति करता है। इसमें पितृभक्ति, पुत्र-प्रेम, भ्रातृ-स्नेह एवं जन-साधारण से सौहार्द का सुन्दर चित्रण है। सांस्कृतिक दृष्टि से यह राम-राज्य का आदर्श, पाप पर पुण्य की विजय, लोभ पर त्याग का प्राबल्य, अत्याचार और अनाचार पर सदाचार की विजय, वानरों में आर्य-संस्कृति का प्रसार, यज्ञादि का महत्व, जीवन में नैतिकता, सत्य-प्रतिज्ञता और कर्तव्य के लिये बलिदान का आदर्श प्रस्तुत करता है। राजनीतिक दृष्टि से यह राजा के कर्तव्य और अधिकार, राजा-प्रजा-सम्बन्ध, उच्च नागरिकता, उत्तराधिकार-विधान, शत्रु-संहार, पाप-विनाशन, सैन्य-संचालन आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। रामायण भारतीय सभ्यता, नगर-ग्रामादि-निर्माण, सेतुबन्ध,

वर्णाश्रम–व्यवस्था आदि सांस्कृतिक एवं सामाजिक विषयों पर प्रकाश डालने वाला प्रकाश–स्तम्भ है, जिसके प्रकाश में प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का साक्षात् दर्शन होता है।

महाभारत :

संक्षिप्त परिचय–

भारतीय लौकिक साहित्य में रामायण के पश्चात् महाभारत का ही स्थान है। यह कई दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह भारतीय साहित्य का आकर ग्रन्थ है, जिसमें तत्कालीन सभी सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि विषयों का समन्वय है। यह एक ओर सुललित पद्यात्मक बन्ध है तो दूसरी ओर आचार संहिता है। इसमें चतुर्वर्ग के सभी विषय, धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष, प्रतिपादित हैं। महाभारत के बृहत् संस्करण में लेखक की महत्त्वाकांक्षा रही है कि उस समय का उल्लेखनीय कोई भी विषय छूट न जाये। इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के कारण ही यह 'भारत' से 'महाभारत' हो गया। महाभारत में स्वयं इस तथ्य का उल्लेख है।

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

(महा0 आदि0 62–53)

महाभारत के प्रमुख रचयिता व्यास (वेदव्यास या कृष्ण द्वैपायन) हैं। इसमें 18 पर्वो में कौरव–पाण्डवों का इतिहास है। जिसकी प्रमुख घटना महाभारत युद्ध है।

महाभारत की संक्षिप्त कक्षा :

18 पर्वों में संक्षेप में मुख्य कथानक यह है– 1. आदि पर्व–चन्द्रवंश का इतिहास और कौरव–पाण्डवों की उत्पत्ति, 2. सभा पर्व–द्यूत क्रीड़ा, 3. वन पर्व– पाण्डवों का वनवास, 4. विराट् पर्व–पाण्डवों का अज्ञातवास, 5. उद्योग पर्व– श्रीकृष्ण द्वारा सन्धि का प्रयत्न, 6. भीष्म पर्व– अर्जुन को गीता का उपदेश, युद्ध का प्रारम्भ, भीष्म का आहत होकर शरशय्या पर पड़ना, 7. द्रोण पर्व– अभिमन्यु और द्रोण का वध, 8. कर्ण पर्व– कर्ण का युद्ध और वध, 9. शल्य पर्व– शल्य का युद्ध और वध, 10. सौप्तिक पर्व– सोते

हुए पाण्डवों के पुत्रों का अश्वत्थामा द्वारा वध, 11. स्त्री पर्व– शोकाकुल स्त्रियों का विलाप, 12. शान्ति पर्व– युधिष्ठिर के राजधर्म और सम्बन्धी सैकड़ों प्रश्नों का भीष्म द्वारा उत्तर, 13. अनुशासन पर्व–धर्म और नीति की कथायें, भीष्म का स्वर्गारोहण, 14. आश्वमेधिक पर्व– युधिष्ठिर का अश्वमेघ अनुष्ठान, 15. आश्रमवासिक पर्व– धृतराष्ट्र आदि का वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश, 16. मौसल पर्व– यादवों का पारस्परिक संघर्ष से नाश, 17. महाप्रस्थानिक पर्व– पाण्डवों की हिमालय यात्रा, 18. स्वर्गारोहण पर्व– पाण्डवों का स्वर्गारोहण।

महाभारत का समय :

वाल्मीकि रामायण के तुल्य महाभारत के भी काल निर्णय में कुछ मौलिक कठिनाइयाँ हैं। 1. पाश्चात्त्य विद्वानों का महाभारत के युद्ध को वास्तविक और ऐतिहासिक घटना न मानना। 2. महाभारत के पात्रों को ऐतिहासिक न मानना। 3. महाभारत के निर्माण सम्बन्धी किसी तिथि का स्पष्ट उल्लेख न होना। 4. पाश्चात्त्य विद्वानों का महाभारत के पात्रों, महाभारत युद्ध और महाभारत ग्रन्थ, इन तीन पृथक बातों को असंगत रूप से मिश्रित करना।

पुष्ट तथ्यों के अभाव में महाभारत के रचना काल के विषय में जो मन्तव्य उपस्थित किये गये हैं, वे सर्वथा अनुमान पर आश्रित हैं। कुछ हद तक इसकी पूर्व सीमा और अपरसीमा अवश्य निर्धारित की जा सकती है।

पूर्व सीमा :

महाभारत की पूर्व सीमा कम से कम 500 ई0पू0 माननी चाहिये। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि वैदिक साहित्य में महाभारत के पात्रों का घटनाओं का जो उल्लेख मिलता है, वह ऐतिहासिक महाभारत की मूल घटनाओं पर निर्भर है, जिसका समय कम से कम 1 हजार ई0पू0 है। भारतीय परम्परा के अनुसार महाभारत युद्ध की घटना 3100ई0 पू0 है। वैदिक साहित्य में प्राप्त महाभारत के पात्रों और घटनाओं के उल्लेख का सम्बन्ध महाभारत ग्रन्थ से नहीं है। जैसे– अथर्ववेद के कुन्ताप सूक्त (कांड 20 सू0 127) में परीक्षित का उल्लेख, शांखायन श्रौत

सूत्र (15–16) में कुरुक्षेत्र के युद्ध में कौरवों की पराजय का उल्लेख, ब्राह्मण ग्रन्थों में कुरु–पांचाल आदि का उल्लेख। महाभारत की पूर्व सीमा कम से कम 500ई0पू0 मानने के कारण ये हैं–

1. आश्वलायन गृह्यसूत्र (3–4–4) में भारत और महाभारत दोनों का उल्लेख है। इसका कम से कम 400ई0पू0 है।
2. बौधायन गृह्य सूत्र में गीता का एक श्लोक प्रमाण रूप में उद्धृत है।

बौ0गृ0–'देशाभावे द्रव्याभावे साधारणे कुर्यात् मनसा वाऽर्चयेदिति, यदाह भगवान्–पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

(गीता0 9–26)

बौधायन धर्म सूत्र (2–2–26) में भी महाभारत की चर्चा है। इनका समय कम से कम 400 ई0पू0 है। अतः महाभारत इससे पूर्ववर्ती है।

3. भास (450 ई0पू0 के लगभग) के 6 नाटक–दूत–वाक्य, कर्णभार, पंचरात्र, ऊरुभंग आदि महाभारत पर आश्रित हैं। अतः महाभारत 450 ई0पू0 से पूर्ववर्ती है।
4. पाणिनी (450 ई0पू0 के लगभग) ने महाभारत के कतिपय पात्रों– युधिष्ठिर, भीम, विदुर आदि की व्युत्पत्ति दी है। साथ ही महाभारत शब्द की सिद्धि भी दी है। अतः महाभारत की सत्ता 500 ई0पू0 से पूर्व सिद्ध होती है। पतंजलि (150ई0पू0) ने महाभारत युद्ध का वर्णन विस्तार से दिया है।
5. महाभारत में शान्ति पर्व (339–100) में दस अवतारों के वर्णन में बुद्ध का नाम नहीं है। अतः महाभारत बुद्ध (563 ई0पू0–483 ई0पू0) के समय से पूर्व की रचना है।

अपर सीमा :

कतिपय प्रमाणों से ज्ञात होता है कि 1 लाख श्लोकों वाला महाभारत प्रथम शताब्दी ई0 में विद्यमान था।

1. अश्वघोष (78ई0 के लगभग) ने व्रजसूचिकोपनिषद् में महाभारत और हरिवंश पर्व के श्लोक उद्धृत किये हैं। हरिवंश के उद्धरण का अभिप्राय है कि महाभारत 1 लाख श्लोकों वाला चलि है।

2. डायो क्रायसोस्टोम नाम का एक यूनानी लेखक 50ई0 में पाण्ड्य देश (दक्षिण) में आया था। उसने अपने संस्मरण में यह लिखा है कि भारत में 1 लाख श्लोकों वाला इलियड है। यह इलियड वस्तुतः महाभारत का ही सूचक है। डॉ0 वेबर, होल्त्समान, पिशेल, रॉलिन्सन आदि ने भी डायो के इलियड को महाभारत माना है। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने भी इस तथ्य को देते हुए वर्तमान महाभारत का समय प्रथम शताब्दी ई0 दिया है।

3. अनेक विद्वानों ने द्वितीय और तृतीय शताब्दी ई0 के बाद 1 लाख श्लोकों वाले महाभारत को उल्लेख करने वाले सन्दर्भो का संग्रह किया है। प्रो0 हॉप्किन्स और प्रो0 सिल्वाँ लेवी ने जो सन्दर्भ दिये हैं, उनमें से कुछ ये हैं–क. कुमारिल भट्ट (700ई0) ने महाभारत को स्मृति ग्रन्थ माना है और प्रायः सभी पर्वो से उद्धहरण दिये हैं। ख. सुबन्धु (600ई0) और बाण (608–640ई0) ने भी महाभारत का उल्लेख किया है। ग. गुप्त काल के एक शिलालेख (442ई0) में महाभारत को 'शतसाहस्री संहिता' कहा है। घ. 450 से 500 ई0 के दानपत्रों में महाभारत को– 'शतसाहस्र्यां संहितायां वेद्व्यासेनोक्तम्' कहा गया है। ड. कम्बोडिया के 600ई0 के एक शिलालेख में महाभारत का उल्लेख है।

निष्कर्ष :

अतः कहा जा सकता है कि महाभारत का मूलरूप कम से कम 500ई0पू0 में तैयार हो चुका है और उसका परिवर्धित 1 लाख श्लोक वाला रूप प्रथम शताब्दी ई0 में पूर्ण हो चुका है। महाभारत में 5वीं, 6वीं शताब्दी ई0 तक परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन होते रहे हैं।

महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व :

रामायण के पश्चात् महाभारत की सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ हैं यदि वास्तविकता की दृष्टि से देखा जाये तो महाभारत सांस्कृतिक दृष्टि से रामायण से भी बढ़कर है। संस्कृति और सभ्यता का महाभारत में जितना विशुद्ध चित्रण मिलता है, उतना अन्यत्र किसी भी ग्रन्थ में दुर्लभ है। महाभारत का वास्तविक सांस्कृतिक महत्त्व भगवद्गीता के कारण है। गीता करोड़ों हिन्दुओं के लिये न केवल आचार संहिता है, अपितु वेद के समकक्ष एक धर्मग्रन्थ है। आर्यधर्म के सभी भेद-उपभेद गीता की प्रामाणिकता पर नाममात्र भी सन्देह नहीं करते। सत्य तो यह है कि गीता आर्य धर्म को समन्वित एवं सूत्रबद्ध करने वाली श्रृंखला है। महाभारत एक नहीं, अनेक दृष्टि से अन्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रण, राष्ट्रीय भावना का उदय, आसुरी प्रवृत्तियों के दमन का प्रयास, भौगोलिक अनेकता में एकता, जीवन दर्शन की व्यावहारिक दृष्टि से व्याख्या, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता, महिलाओं में अबलात्व के परित्याग की प्रवृत्ति, राजनीति-कूटनीति-कूटनीति-दण्डनीति और अनीति का व्यावहारिक प्रदर्शन, राजधर्म का सर्वांगीण निरूपण, आख्यानसाहित्य का अक्षय कोष, नीति शास्त्र की बहुमूल्य निधि एवं चतुर्वर्ग की सभी समस्याओं का समाधान है। इसमें एक ओर राजधर्म का उपदेश है तो दूसरी ओर मोक्ष धर्म का, एक और अशान्ति है तो दूसरी ओर शान्ति चर्चा, एक ओर कर्म मार्ग है तो दूसरी ओर ज्ञान मार्ग, एक ओर दुर्योधन जैसा सहज शत्रु है तो दूसरी ओर युधिष्ठिर जैसा अजातशत्रु, एक ओर भीष्मपितामह जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं तो दूसरी ओर शिखण्डी जैसे क्लीब, एक ओर अभिमन्यु जैसा कर्मशूर है तो दूसरी ओर अश्वत्थामा जैसा वाक्शूर, एक ओर श्रीकृष्ण जैसे योगिराज और नीति निपुणा हैं तो दूसरी ओर दुःशासन जैसा दुश्चरित्र और नीति विध्वंसक, एक ओर विदुर जैसे ज्ञानी और पवित्रात्मा है तो दूसरी शकुनि जैसे छद्मजीवी, एक ओर भीष्म जैसा पराक्रमी महारथी है तो दूसरी ओर जयद्रथ जैसा कायर। इस प्रकार महाभारत में विरोधी गुणों का समावेश है। इसमें विरूपता में एकरूपता, अनेकता में एकता, विश्रृंखलता में

समन्वय, व्यवहार में आदर्श, अशान्ति में शान्ति, प्रेय में श्रेय और धर्मार्थ में मोक्ष का समन्वय है।

महाकाव्य के लक्षण :

भामह (700 ई0) ने भामहालंकार (1–18–23) में, दण्डी (7वीं शताब्दी) ने काव्यादर्श (1–14–22), में (अग्निपुराण (अध्याय 337) में और विश्वनाथ (1350 ई0) ने साहित्य दर्पण (6–315 से 325) में महाकाव्य के लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। साहित्य दर्पण में प्राप्त महाकाव्य का लक्षण सर्वांगीण और व्यापक है। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का लक्षण है[1]–

1. यह सर्गो में विभक्त है। 2. इसका नायक देवता, कुलीन, क्षत्रिय या एक वंशज कुलीन अनेक राजा होते हैं। 3. श्रृंगार, वीर और शान्त रस में से कोई एक प्रधान रस होता है और अन्य उसके सहायक। 4. इसमें सभी नाटकीय संधियाँ होती है। 5. इसका कथानक ऐतिहासिक होता है या किसी सज्जन व्यक्ति से संबद्ध। 6. इसमें चतुर्वर्ग–धर्म, काम और मोक्ष का वर्णन होता है और उनमें से किसी एक फल की प्राप्ति का वर्णन होता है।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।। 315 ।।

सद्वंशः क्षत्रियों वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।। 316 ।।

श्रृंगारवीरशान्तनामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः ।।317 ।।

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।। 318 ।।

आदौ नमस्क्रियाऽऽशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।। 319 ।।

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।। 320 ।।

कवेवृर्त्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।। 324 ।।

नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।। 325 ।।

(सा0द0परि0 6)

7. प्रारम्भ में देवादि को नमस्कार, आशीर्वाद या वस्तु निर्देश होता है। कहीं दुर्जन निन्दा और सज्जन प्रशंसा भी रहती है। 8. प्रत्येक सर्ग में एक छन्द वाले पद्य रहते हैं किन्तु अन्त में छन्द परिवर्तन हो जाता है। 9. इसमें आठ से अधिक सर्ग होते हैं जो न बहुंत छोटे न बड़े होते हैं। 10. कहीं विभिन्न छन्दों वाले सर्ग भी होते हैं। 11. सर्ग के अन्त में भावी कथा का संकेत होता है। 12. इसमें इन चीजों के वर्णन रहते हैं। संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष (गोधूलिवेला), अन्धकार, दिन, प्रातः, मध्यान्ह, मृगया, शैल, वन, सागर, युद्ध, प्रस्थान, विवाह, मंत्र (राजनीति के 6 अंक), पुत्र, उदय (उत्थान) आदि। 14. सर्गो का नाम वर्णित कथा के आधार पर रखना चाहिये। आर्ष महाकाव्यों (रामायण, महाभारत) में सर्गो का नाम आख्यान पर निर्भर होता है।

उदारण के रूप में रामायण और महाभारत में उपर्युक्त सभी तत्वों का समावेश है। रामायण, महाभारत और रघुवंश में अनेक नायक है। रामायण आदि का कथानक ऐतिहासिक है। रघुवंश, कुमारवंभव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित महाकाव्य के सभी लक्षणों के सुन्दर दृष्टान्त हैं। इनमें वीर या श्रृंगार रस मुख्य है। एक सर्ग में एक ही छूद है, अन्त में छन्द परिवर्तन हो जाता है। इनमें 8 से अधिक सर्ग है। साथ ही सूर्योदय, चन्द्रोदय, प्रातःकाल, सायंकाल, मृगया, विवाहादि का वर्णन है। रामायण, रघुवंश, कुमारसंभव, नैषध0 नायक के नाम पर है, किराता0 और शिशुपालवध आदि कथानक के नाम पर है, भट्टिकाव्य कवि के नाम पर है। इनमें सर्गो के नाम वर्णित कथा के आधार पर हैं। जैसे–इति श्रीरघुवंशे महाकाव्ये रघुराज्याभिषेको नाम तृतीयः सर्गः।

महाकाव्यों का उद्भव और विकास :

महाकाव्यों का उद्भव ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों, इन्द्र, विष्णु और उषा आदि के स्तुति मंत्रों तथा नाराशंसी और गाथाओं से हुआ है। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में इन आख्यानों आदि का बृहद् रूप मिलता है। यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य के रूप में परिवर्तित हो गया है। रामायण और महाभारत आगे चलकर परवर्ती काव्यों और महाकाव्यों के लिये उपजीव्य ग्रन्थ हो गये हैं।

रामायण और महाभारत के बाद कालिदास की उत्पत्ति तक जो महाकाव्य लिखे गये थे, वे केवल नाममात्र ही शेष हैं। कालिदास की अलौकिक प्रतिभा और व्युत्पत्ति के सभी पूर्ववर्ती काव्यों और महाकाव्यों को निष्प्रभ कर दिया। फलस्वरूप उनका अस्तित्व समाप्त सा हो गया। इस काल के कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं–

1. पाणिनी (450 ई0पू0) कृत जाम्बवतीजय या पातालविजय। इसमें 18 सर्गो में श्रीकृष्ण का पाताल में जाकर जाम्बवती के विजय और परिणय की कथा वर्णित है।

2. वररुचि (350 ई0पू0) ने 'स्वर्गारोहण' नामक काव्य बनाया था। इसे पंतजलि (4–3–101) ने 'वाररुचंकाव्यम्' कहकर संबोधित किया है। समुद्रगुप्त के 'कृष्णचरित' काव्य में इसका उल्लेख है।

3. महाभाष्यकार पतंजलि (150 ई0पू0) ने भी इसी श्रृंखला में 'महानन्दकाव्यं' लिखा है। समुद्रगुप्त ने 'कृष्णचरित' की प्रस्तावना में लिखा है कि पतंजलि ने योगशास्त्र की व्याख्या के रूप में 'महानन्द' नामक काव्य लिखा।

इसके पश्चात् महाकवि कालिदास का काव्याकांश में उदय होता है। कालिदास को ही वस्तुतः प्रौढ, परिष्कृत, प्रांजल एवं मनोज काव्य शैली का प्रवर्तक कहा जा सकता है। उसने जो आदर्श उपस्थित किये, वह परकालीन कवियों और महाकवियों के लिये अनुकरणीय हुए। सरस, सालंकार एवं उच्च कल्पनाओं से ओत–प्रोत कविता की निर्झरिणी कालिदास शैल शिखर से ही प्रवाहित होती है। इसी श्रृंखला में महाकवि भारवि, माघ और श्रीहर्ष के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

महाकाव्यों के विकास के इतिहास को दो दृष्टि से उपस्थित किया जा सकता है– 1. रूपगत विकास, 2. शैलीगत विकास

1.रूपगत विकास– इसके 3 स्तर हैं–

अ. वैदिक काल– सरल आख्यान, देवस्तुति आदि। इनमें भाव प्रधानता है।

ब. **वीर महाकाव्य काल**– इसमें रामायण और महाभारत हैं। इनमें भाव और आख्यान तत्त्वों की प्रधानता है।

स. **लौकिक महाकाव्य काल**– इसमें कालिदास तथा परवर्ती काव्यकार हैं। इनके काव्यों में भाव पक्ष की अपेक्षा कला तत्त्व अधिक उदात्त है।

2. शैलीगत विकास– इसके भी 3 स्तर हैं–

अ. **प्रसादात्मक शैली**– यह रामायण, महाभारत, कालिदास, अश्वघोष आदि में प्राप्त हैं। इसमें सरलता, सरसता और अर्थ गाम्भीर्य पर अधिक बल है।

ब. **अलंकारात्मक शैली**–यह भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि के सालंकृत काव्यों में मुख्यतया प्राप्य है।

स. **श्लेषात्मक शैली**–यह द्वयर्थक और त्र्यर्थक काव्यों में प्राप्य है। इस शैली के काव्य हैं– धनंजय कृत–द्विसन्धान काव्य, कविराजसूरिकृत–राघवपाण्डवीय, हरिदत्तसूरिकृत–राघवचूड़ामणि, दीक्षित कृत राघवयादव पाण्डवीय तथा चिदम्बरसुमति कृत राघवपाण्डवयादवीय (ये त्र्यर्थक काव्य हैं)।

महाकाव्यों की संक्षिप्त कथा :

1 कुमारसंभवमहाकाव्यम्

इस महाकाव्य के प्रणेता महाकवि कालिदास हैं। इस काव्य में हिमालय की पुत्री पार्वती द्वारा घोर तपस्या के फलस्वरूप वर रूप में शिव को प्राप्त करने तथा उनसे कार्तिकेय (स्कन्द, कुमार) की उत्पत्ति का वर्णन है। सर्गानुसार कथा संक्षेप में इस प्रकार है– सर्ग 1 हिमालय वर्णन तथा पार्वती की उत्पत्ति, सर्ग 2– तारकासुर से पीड़ित देवों का ब्रह्मा के पास जाना और शिव–पार्वती के पुत्र स्कन्द द्वारा तारकासुर के वध का उपाय ब्रह्मा के द्वारा बताया जाना, सर्ग 3– कामदेव द्वारा शिव की तपस्या का भंग किया जाना और क्रुद्ध शिव द्वारा कामदेव को भस्मसात् करना, सर्ग 4– पति के नाश पर रति का विलाप, सर्ग 5– पार्वती की घोर तपस्या का वर्णन और ब्रह्मचारी वेशधारी शिव से पार्वती का संलाप और

समागम, सर्ग 6– विवाहेच्छुक शिव का पार्वती के याचनार्थ सप्तर्षियों को हिमालय के पास भेजना, सर्ग 7– शिव की वरयात्रा और पार्वती परिणय, सर्ग 8– शिव पार्वती का दाम्पत्य जीवन, केलि विहार वर्णन। (कुछ विद्वान, केवल 8 सर्ग की कालिदास की रचना मानते हैं)। सर्ग 9– दाम्पत्य सुखानुभव करते हुए विविध पर्वतों आदि पर घूमकर कैलास पर्वत पर वापस आना, सर्ग 10– कार्तिकेय (कुमार, स्कन्द) का गर्भ आना, सर्ग 11– कुमार जन्म तथा कुमार का बाल्य वर्णन, सर्ग 12– कुमार का सेनापतित्व, सर्ग 13– कुमार द्वारा सैन्य संचालन, सर्ग 14– देव सेना का आक्रमणार्थ प्रयाण, सर्ग 15– देवासुर सैन्य संघर्ष, सर्ग 16– युद्ध वर्णन, सर्ग 16 – तारकासुर वध।

समीक्षा :

कुमारसंभव कालिदास की प्रतिभा का सुन्दर निदर्शन है। इसमें भाव पक्ष और कला पक्ष के सुमधुर समन्वय है अलंकारों की सुन्दर छटा, वर्णनों में सजीवता, व्यापकता और स्वाभाविकता, भाषा का परिष्कार, कल्पना की उदात्तता, भावों की मनोज्ञता, रसों का सुन्दर परिपाक, रसराज श्रृंगार का सर्वांगीण वर्णन, तपोमूलक परिष्कृत प्रेम का महत्त्व प्रतिपादन तथा छन्दोयोजना में सिद्धहस्तता कुमारसंभव की प्रमुख विशेषतायें हैं। इस दृष्टि से कुमारसंभव एक सफल महाकाव्य हैं। इसकी अन्य विशेषताओं का वर्णन आगे किया गया है।

कतिपय विद्वानों का मत है कि कुमारसंभव के प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास की कृति हैं। आगे के 9 सर्ग किसी अन्य कवि की रचना है। इसके लिये भाव, भाषा–शैली, व्याकरण और छन्द सम्बन्धी दोष एवं पाद–पूर्त्यर्थक शब्द प्रयोग कारण बताये गये हैं। आठ सर्गो पर ही मल्लिनाथ की टीका का होना भी एक कारण माना गया है। अष्टम सर्ग में शिव–पार्वती की रति क्रीड़ा का वर्णन भी आपत्तिजनक माना गया है। अतः कहा जाता है कि इन कटु आलोचनाओं के कारण कालिदास ने आगे लिखना छोड़ दिया था।

वस्तुतः यह मन्तव्य अपुष्ट एवं अस्पष्ट आधारों पर निर्भर है। 1. मल्लिनाथ की टीका वस्तुतः 7 सर्गो पर ही है। 8वें सर्ग की

टीका अत्यन्त दोषपूर्ण हैं। अतः मल्लिनाथ की कृति नहीं मानी जाती है। टीकाकार सीताराम कवि का भी यही मत है। 'टीका सप्तमु मल्लिनाथकृतिना संजीविनीसंज्ञिका, या सर्गेषु कुमारसंभवमहाकाव्यस्य चक्रे पुरा। 2. टीकाकार सीताराम कवि ने 8 से 17 सर्गो को कालिदास की कृति मानकर उनकी टीका की है। 3. वामन (800ई.) ने आक्षेपास्पद अष्टम सर्ग से उद्धरण दिया है। 4. कुमार के जन्म का वर्णन 11वें सर्ग में है। उससे पूर्व ग्रन्थ की समाप्ति का कोई कारण नहीं है। 5. अन्तिम 9 सर्गो के बिना कुमारसंभव का महाकाव्यत्व अपूर्ण रहता है। 6. भाव, भाषा, शैली आदि की हीनता के दोष सर्वथा अस्पष्ट और अपुष्ट हैं। 7. अन्तिम 9 सर्गो में भी भाव और भाषा की पुष्टि, प्रौढता एवं अलंकारिक चमत्कार पग–पग पर दृष्टिगोचर होते हैं। 8. यदि भाषा, अलंकार आदि को ही इसका आधार माना जाये तो रंघुवंश के अन्तिम सर्गो में भी ये न्यूनतायें सर्वथा सुलभ हैं। अतः पूरे 17 सर्गो को कालिदास की कृति मानना उचित है।

2. रघुवंश महाकाव्यम् :

इसमें मनु से लेकर सूर्यवंशी 31 राजाओं के जीवन का वर्णन है। इनमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम के जीवन का विशद एवं विस्तृत वर्णन है। सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है– सर्ग 1– राजा दिलीप की सन्तानहीनता और सन्तान प्राप्त्यर्थ कुलगुरु वसिष्ठ के आदेशानुसार कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा का व्रत लेना। सर्ग 2– नन्दिनी की सेवा, राजा की परीक्षा, प्रसन्न नन्दिनी द्वारा सन्तान लाभ का वरदान, सर्ग 3– रघु का जन्म, विद्याध्ययन, इन्द्र से युद्ध में विजय प्राप्ति तथा रघु का राज्याभिषेक, सर्ग 4– रघु के दिग्विजय का वर्णन, सर्ग 5– ब्रह्मचारी कौत्स द्वारा गुरुदक्षिणार्थ 14 करोड़ रूपये की याचना, तदर्थ रघु का कुबेर पर आक्रमण, धन वृष्टि, प्रसन्न कौत्स द्वारा रघु को पुत्र लाभ का आशीर्वाद, फलस्वरूप पुत्र अज का जन्म, इन्दुमती स्वयंबर के लिये अज का प्रस्थान, सर्ग 6– इन्दुमती स्वयंबर का वर्णन, सर्ग 7– अज इन्दुमती परिणय, प्रतिस्पर्धी राजाओं से युद्ध और अज की विजय, सर्ग 8 अज का राज्याभिषेक, दशरथ जन्म, इन्दुमती वियोग और अज का विलाप,

सर्ग 9– दशरथ का मृगया वर्णन, श्रवण कुमार की हत्या और दशरथ को शाप प्राप्ति, सर्ग 10– पुत्रेष्टि यज्ञ, राम आदि 4 पुत्रों का जन्म, सर्ग 11– सीता स्वयंबर और राम आदि का विवाह, सर्ग 12– राम वनवास, सीता हरण, युद्ध, रावण वध, सर्ग 13– राम का पुष्पक विमान से अयोध्या प्रत्यागमन तथा मार्गस्थ स्थानों का विशद वर्णन, सर्ग 14– राम राज्याभिषेक, सर्ग 15– कुश लव जन्म, राम का स्वर्गारोहण, सर्ग 16– कुश का राज्याभिषेक, कुश का कुमुद्वती से विवाह, सर्ग 17– कुश का स्वर्गवास, कुश पुत्र अतिथि का राज्याभिषेक, सर्ग 18– अतिथि तथा उसके वंशज 21 राजाओं का संक्षिप्त वर्णन, सर्ग 19– अग्निवर्ण का राज्याभिषेक, उसकी अत्यधिक विषयासक्ति, राजयक्ष्मा से पीड़ित होकर स्वर्गवास, उसकी रानी का राज्याभिषेक, गर्भस्थ बालक के उत्तराधिकारी होने का अमात्यों द्वारा निर्णय।

रघुवंशियों का वंश वृक्ष :

रघुवंश में 31 सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन है। उसका क्रम यह है– 1. मनु (वैवस्वत) (वंशज) 2. दिलीप 3. रघु 4. अज 5. दशरथ 6. राम, 7. लव, 8. कुश 9. अतिथ 10. निषध 11. नल 12. नम 13. पुण्डरीक 14. क्षेमघन्वा 15. देवानीक 16. अहीनग 17. पारियात्र 18. शिल 19. उन्नाभ 20. वज्रणाम 21. शंखण 22. व्युषिताश्व 23. विश्वसह 24. हिरण्यनाभ 25. कौसत्य 26. ब्रह्मिष्ठ 27. पुत्र 28. पुण्य 29. ध्रुवसंधि 30. सुदर्शन 31. अग्निवर्ण। तत्पश्चात् अग्निवर्ण की पत्नी तथ गर्भस्थ बालक को राज्याधिकार।

समीक्षा :

रघुवंश कालिदास की प्रतिभा का काव्य रूप में सर्वोत्तम निदर्शन है। कवि की प्रतिभा का प्रस्फुरण पद–पद पर परिलक्षित होता है। एक ओर भावों का सौन्दर्य है तो दूसरी ओर कलात्मकता का चमत्कार। एक ओर भाषा में प्रसाद और माधुर्य है तो दूसरी ओर अलंकारों की अनुपम छटा। एक ओर वाच्यार्थ की मुख्यता है तो दूसरी ओर व्यंग्यार्थ का अपूर्व संयोजन। एक ओर संभोग श्रृंगार का सुखद रसास्वाद है तो दूसरी ओर विप्रलंभ श्रृंगार की मार्मिक अनुभूति। एक ओर ब्राह्य प्रकृति का विशद वर्णन है तो दूसरी

ओर अन्तः प्रकृति का तात्त्विक विश्लेषण। एक ओर अज इन्दुमती के प्रगाढ प्रेम का चित्रण है तो दूसरी ओर सीता परित्याग का मार्मिक दृश्य। एक ओर दिलीप आदि का तपोमय जीवन है तो दूसरी ओर अग्निवर्ण की घोर विषयासक्ति। एक ओर राजा का आदर्श और उसकी प्रजावत्सलता है तो दूसरी ओर प्रजा की राजभक्ति। एक ओर राजतंत्र का महत्व है तो दूसरी ओर प्रजा में विचार स्वातन्त्र्य। इस प्रकार रघुवंश विविध विरोधी गुणों का समन्वय है। कहीं दार्शनिक पाण्डित्य प्रदर्शन है तो कहीं काव्य शास्त्रीय वैदुष्य, कहीं उपमा का मनोहर प्रयोग है तो कहीं अर्थान्तरन्यास की छटा। कहीं श्रमसाध्य यमक है तो कहीं सहज उत्प्रेक्षायें, कहीं वर्णन वैविध्य है तो कहीं कल्पना की ऊँची उड़ान। इस प्रकार कालिदास सभी दृष्टि से कवियों के लिये आदर्श हो गये। रघुकार कालिदास के इस वैशिष्टय के कारण ही कवियों और आलोचकों को कहना पड़ा है कि– 'क इह रघुकारे न रमते'।

कालिदास की शैली एवं काव्य सौन्दर्य :

कविता कामिनी कान्त कालिदास न केवल संस्कृत वाड़मय के, अपितु विश्व वाड़मय के मुकुटालंकार है। उनकी सूक्ष्म दृष्टि बाह्य जगत और अन्तर्जगत् की तात्त्विक विधाओं का साक्षात्कार करती हुई मनोरम पदावली में उनको अनुस्यूत करती है। उनकी कलात्मक तूलिका नीरस में रस, कर्कश में कोमलता, कठोर में सुकुमारता, सामान्य में विलक्षणता, दुर्बोध में सुबोधता, काव्य में सर्वात्कता और प्रसाद में माधुर्य का संचार करती हैं। उनकी कलात्मक रूचि की छाप पग–पग पर दृष्टिगोचर होती है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार काव्य को ध्वन्यात्मक बना देता है। भावों की अगाधता और विविधता उनके काव्याकाश में इन्द्रधनुष की छटा प्रस्तुत करती है। उनकी भाषारूपी कालिन्दी और भावरूपी भागीरथी के मध्य सालंकृत पदावली रूपी सरस्वती संगम का महनीय वैभव उपस्थित करती है। उनकी शैली में दुरूहता में सुबोधता, काव्य में नाटकीयता, नैसगिक सुषमा में सालंकारता, सरलता में सरसता, सहज भावाभि व्यक्ति में कल्पना प्राचुर्य और श्रृंगार में भी करुण रसाप्लावन जैसे विरोधी गुणों का समन्वय मिलता है। उनकी शैली में भाषा सौष्ठव, मनोरम भावाभिव्यक्ति,

अलंकारों का सहज विन्यास, अन्तः और बाह्य प्रकृति का चारु चित्रण, रसों का सुन्दर परिपाक, जीवन दर्शन की रुचिर स्थापना, विविध निधानता और मनोभावों की मार्मिक अनुभूति मनोज्ञ मणि कांचन संयोग उपस्थित करती है। प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति उनके काव्य गौरव को अधिक समुन्नत करती है। इनकी शैली में कहीं उपमाओं का लालित्य है, तो कहीं अर्थान्तरन्यास का अर्थ गाम्भीर्य, कहीं उत्प्रेक्षाओं की ऊँची उड़ान है तो कहीं प्रांजल पदावली का सौकुमार्य, कहीं प्रसाद है तो कहीं माधुर्य, कहीं कला प्रधान है तो कहीं कल्पना।

भाषा सौष्ठव :

कालिदास ने भाव सौष्ठव आदि के साथ ही भाषा सौष्ठव, पद लालित्य एवं प्रांजलता पर भी पूरा ध्यान दिया है। कालिदास की भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि उसकी भाषा रसानुकूल होती है। प्रकरण, प्रसंग, पात्र और वर्ण्य विषय के अनुरूप शब्दावली का संचयन मिलता है। कहीं–कहीं पर शब्दध्वनि भावध्वनि को अभिव्यक्ति करती है। इस प्रकार के पद माधुर्य के कारण उनके काव्यों में संगीतात्मकता और लयात्मकता का दर्शन होता है। उदाहरण स्वरूप कुछ श्लोक प्रस्तुत किये जा रहें हैं।

वाल्मीकि के आश्रम में परित्यक्त जानकी के करुण क्रन्दन का क्या ही मार्मिक चित्रण कालिदास ने प्रस्तुत किया है। जानकी के शोक पर समवेदना प्रकट करते हुए मोरों ने नाचना, भ्रमरों ने कुसुम रसास्वाद, मृगियों ने कुश चर्वण छोड़ दिया था। इस प्रकार सारे वन में करुण का ही दृश्य उपस्थित था।

नृत्यं मयूराः कुमुमानि भृंगा।
दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव
मत्यन्तमासीद् रूदितं वनेऽपि।। – (रघु0 14–69)

भावाभिव्यक्ति :

कालिदास ललित भावों के कवि हैं। उनके काव्यों में कल्पना की ऊँची उड़ान, मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति और भाव सौन्दर्य पग–पग पर परिलक्षित होता है।

कन्या सुलभ शालीनता और संकोच का क्या ही सुन्दर वर्णन पार्वती के वर चयन के प्रसंग में मिलता है।

एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।।

(कुमार0 6–84)

नारद ने जब वररूप में शंकर का उल्लेख किया तो पिता के समीप बैठी हुई पार्वती शील और संकोच के कारण नीचे मुख किये हुये लीला कमलों के पत्तों को गिनती रही।

कालिदास ने पार्वती द्वारा शिव के वरण के प्रसंग में मार्मिक व्यंजना प्रस्तुत की है। एक ओर शिव की अकिंचनता, दुर्वेष, असौन्दर्य और अप्रभावोत्पादकता है। दूसरी ओर पार्वती का अलौकिक सौन्दर्य, सुकुमारता और दिव्य आकर्षण है। दोनों का विरोध हास्य मिश्रित व्यंग्य में प्रकट किया गया है। वटुरूपधारी शिव का कथन है कि शिव से प्रेम करके चन्द्रकला और तुम दोनों ने अपना दुर्भाग्य बुलाया है। कोमल भाव के ललित पदावली का समन्वय भी दर्शनीय है।

द्वयं गतं संप्रति शोचनीयतां
समागमप्रार्थनया कपालिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावत
स्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी।।

(कुमार0 5–71)

दम्पती के सुन्दर सम्बन्धों एवं समन्वयात्मक संपर्क की अभिव्यक्ति अजविलाप में परिलक्षित होती है। अज के लिये इन्दुमती न केवल गृहिणी थी, अपितु मित्र, सचिव और ललितकलाविद् शिष्या थी। उसका वियोग अज का सर्वस्वहरण है। ऐसा दाम्पत्य प्रेम दुर्लभ है।

गृहिणी सचिवः सखी मिथः
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करूणा विमुखेन मृत्युना
हरता त्वां वद किं न में हृतम्।।

(रघु0 8–67)

रस परिपाक :

कालिदास मूलतः श्रृंगार रस के कवि हैं। संयोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकार के श्रृंगार के वर्णन में सिद्धहस्त हैं। करुण रस के भी कतिपय वर्णन अत्यन्त मार्मिक हैं। वीर रस के प्रसंग यद्यपि कम हैं, तथापि उनमें कालिदास की योग्यता किसी भी प्रकार न्यून नहीं है। अन्य रसों के वर्णन अत्यल्प है।

शिव पार्वती के दाम्पत्य प्रेम की अविभाज्यता और अनुकरणीयता की कल्पनापूर्ण तुलना भागीरथी और समुद्र के प्रेम से की है। यदि भागीरथी के लिये समुद्र सर्वस्व है, तो समुद्र के लिये भागीरथी। यही स्थिति शिव और पार्वती के रसात्मक अनुराग की थी।

तं यथात्मसदृशं वरं वधू
रन्वरज्यत वरस्तथैव ताम्।
सागरादनपगा हि जाह्नवी
सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक्।। – (कुमार0 8–16)

संयोग श्रृंगार के एक सुन्दर प्रसंग में कवि ने पार्वती के अधर क्षत की औषधि शिव शिरः स्थित चन्द्रकला बताई है।

दष्टमुक्तमधरोष्ठमम्बिका
वेदनाविधुतहस्तपल्लवा।
शीतलेन निरवापयत् क्षणं
मौलिचन्द्रशकेन शूलिनः।। –(कुमार0 8–18)

विप्रलम्भ श्रृंगार का अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं मनोज्ञ वर्णन राम–परित्यक्ता सीता की भाव विह्वलता में प्राप्त होता है। दुःखातिभार के कारण संज्ञा शून्य सीता को दुःख का भार इतना दुःखदायी न हुआ, जितना होश में आने पर प्रबोध।

सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं
प्रत्सागतासुः समतप्यतान्तः।
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो
मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः।।

– (रघु0 14–56)

करूण रस की भी अभिव्यक्ति श्रृंगार से किसी भ अर्थ में न्यून नहीं है। कामदेव के विनाश पर शोक विधुरा रति मरने के लिये उद्यत है। उसका कथन है। चन्द्रमा के साथ चाँदनी और मेघ के साथ बिजली चली जाती है। पत्नी पति के साथ जाती है, यह अचेतनों में भी दृष्टिगोचर होता है।

शशिना सह याति कौमुदी
सह मेघेन तड़ित् प्रलीयते।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति
प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि।। — (कुमार0 4–33)

अलंकार निरूपण :

कालिदास के काव्यों में अंलकार विधान आयास साध्य न होकर अनायास सिद्ध है। पद–पद पर अनुप्रास, उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास और उत्प्रेक्षाओं के दर्शन होते हैं। यद्यपि यमक, अतिशयोक्ति, दीपक, व्यतिरेक, प्रतिवस्तूपमा, श्लेष, निदर्शना, एकाबली, दृष्टान्त, विरोधाभास, परिणाम आदि अलंकारों के भी सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। तथापि आयास साध्य होने के कारण कवि ने इनको महत्त्व नहीं दिया है। केवल वाग्वैचित्र्य और पांडित्य प्रदर्शक चित्रालंकारों का इनके काव्यों में सर्वथा अभाव है।

उपमा कालिदासस्य :

उपमा कालिदास का अत्यन्त प्रिय अलंकार है। यह कहना असंगत न होगा कि कालिदास उपमा से अलंकृत है। वह उपमा के बिना जीवित नहीं रह सकते है। उनकी उपमायें असाधारण और मनोरम होती है। उनकी विशेषता यह है कि उनमें लिंग साम्य, भाव साम्य और रमणीयता का अनुपम समन्वय है। उनकी उपमायें एकांगी न होकर सर्वांगींण और व्यापक है। कहीं काव्य शास्त्रीय, दार्शनिक, व्याकरण से संबद्ध और वेद विषयम है तो कहीं प्रकृति के विभिन्न रूपों से संबद्ध है। कहीं मूर्त की मूर्त से तुलना है तो कहीं मूर्त की अमूर्त से है।[1]

कालिदास केवल एक सुन्दर दीपशिखा की उपमा से 'दीपशिखा कालिदास' हो गये। इन्दुमती स्वयंबर वर्णन में इन्दुमती की उपमा संचारिणी दीपशिखा से दी गयी है। वह जिस जिस

राजा को छोड़कर आगे निकल जाती थी, वह उसी प्रकार विकर्ण एवं विषादाकुल हो जाता था, जैसे संचारिणी दीपशिखा के आगे निकल जाने पर पूर्ववर्ती राज प्रासाद अन्धकारावृत हो जाता है। क्या ही मनोरम उपमा है।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रवेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः।। – (रघु0 6–67)

3. बुद्धचरितमहाकाव्यम् :

यह महाकवि अश्वघोष द्वारा प्रणीत एक महाकाव्य है। इसमें बुद्ध का जीवन चरित तथा उनके सिद्धान्त वर्णित हैं। इसमें बुद्ध के जन्म से लेकर महानिर्वाण तक की कथा वर्णित है। इस महाकाव्य में मूल रूप में 28 सर्ग थे। चीनी और तिब्बती भाषा में किये गये इसके 28 सर्गो के अनुवाद उपलब्ध हैं। संस्कृत में प्रारम्भ से लेकर 14 सर्ग (14वें के 31 श्लोक तक) प्राप्त होते हैं। 14 से 17 सर्ग तक का पद्यात्मक भाग 1830 ई0 में अमृतानन्द नामक एक नेपाली पंडित ने जोड़ा था। पूरे बुद्धचरित का चीनी अनुवाद धर्मरक्ष, धर्मक्षेम या धर्माक्षर नामक भारतीय विद्वान ने (414 से 421 ई0 में) किया था। तिब्बती भाषा में इसका अनुवाद 800 ई0 के लगभग हुआ था। चीनी यात्री ईत्सिग ने इसको विशाल महाकांव्य बतायाहै। प्रो0 कावेल (E.B.Cowell) ने 1883 ई0 में इंग्लैण्ड से इसका संस्करण प्रकाशित किया था। बुद्धचरित का अंग्रेजी अनुवाद डॉ0 जॉनस्टन ने चीनी और तिब्बती अनुवादों को आधार मानकर किया है। सम्प्रति सर्ग 1 से 14 तक का श्लोकों सहित तथा शेष का जॉनस्टन के आधार पर हिन्दी अनुवाद सूर्यनारायण चौधरी कृत (1943ई0) प्राप्य है।

सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है– सर्ग 1 बुद्ध का जन्म, सर्ग 2 अन्तःपुर में विहार, सर्ग 3 रोगी और वृद्ध आदि व्यक्तियों को देखकर मन में संवेग की उत्पत्ति। सर्ग 4 रमणियों द्वारा बुद्ध को अपने जाल में फंसाने की चेष्टा और बुद्ध द्वारा उनका तिरस्कार, सर्ग 5 बुद्ध का घर से अभिनिष्क्रमण, सर्ग 6 बुद्ध

को छोड़कर घुड़सवार छन्दक का नगर में लौटाना, सर्ग 7 गौतम का तपोवन में प्रवेश, सर्ग 8 अन्तःपुर की नारियों का विलाप, सर्ग 9 कुमार का अन्वेषण, सर्ग 10 बिम्बसार का आगमन, सर्ग 11 काम की निन्दा, सर्ग 12 बुद्ध का अराड़ ऋषि के आश्रम में गमन और अराड द्वारा धर्मोपदेश, सर्ग 13 मार (कामदेव) का बुद्ध की तपस्या में विघ्न डालना। दोनों का युद्ध और कामदेव की पराजय। सर्ग 14 बुद्धत्व की प्राप्ति। (संस्कृत अंश यहीं तक प्राप्त होता है।) शेष सर्गो की कथा इस प्रकार है। सर्ग 15 धर्मचक्र प्रवर्तन, सर्ग 16 अनेक शिष्यों का दीक्षित होना, सर्ग 17 महाशिष्यों की प्रव्रज्या, सर्ग 18 अनाथ पिण्डद की दीक्षा, सर्ग 19 पिता पुत्र समागम, सर्ग 20, जेतवन स्वीकार, सर्ग 21 प्रव्रज्या स्रोत वर्णन सर्ग 22 गौतम का आम्रपाली के उपवन में गमन, सर्ग 23 आयु पर अधिकार करने के प्रकार का वर्णन, सर्ग 24 गौतम की लिच्छिवियों पर अनुकम्पा, सर्ग 25 गौतम का निर्वाण पथ पर अभियान, सर्ग 26 महापरिनिर्वाण, सर्ग 27 निर्वाण की प्रशंसा, सर्ग 28 धातु विभाजन।

4. सौन्दरनन्दमहाकाव्यम् :

यह अश्वघोष का दूसरा महाकाव्य है। इसमें 18 सर्ग हैं। महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री ने नेपाल महाराज पुस्तकालय से जीर्ण–शीर्ण रूप में प्राप्त 2 हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर संपादन करके 1910 ई0 में इसे प्रकाशित कराया था। बाद में डॉ0 जानस्टन ने 1928 ई0 में इसका एक सुन्दर संस्करण अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया था। इसका बंगला अनुवाद श्री लाहा ने तथा हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण सूर्यनारायण चौधरी ने 1948 ई0 में प्रकाशित किया है।

इसमें नन्द और सुन्दरी की कथा वर्णित है। गौतम बुद्ध का सौतेला भाई नन्द अत्यन्त सुन्दर और विलासी प्रकृति का व्यक्ति था। वह अपनी पत्नी सुन्दरी पर अत्यन्त आसक्त था। दोनों चकवा–चकवी के तुल्य एक दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते थे। गौतम बुद्ध ने बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर नन्द को गौतम धर्म की दीक्षा दी। इसी कथा को इसमें काव्यात्मक रूप दिया गया हैं।

सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है– सर्ग 1– गौतम बुद्ध की जन्मभूमि कपिलवस्तु का वर्णन, सर्ग 2– राजा शुद्धोदन का वर्णन, गौतम और नन्द के जन्म, सर्ग 3– गौतम की बुद्धत्व प्राप्ति, सर्ग 4– नन्द का अपनी पत्नी सुन्दरी के साथ बिहार, बुद्ध का भिक्षार्थ नन्द के घर आना, भिक्षा पाये बिना वापस जाना, नन्द का लज्जित होना, बुद्ध के पास क्षमा याचनार्थ जाने के लिये पत्नी से अनुमति लेना, सर्ग 5– बुद्ध द्वारा नन्द को दीक्षा देना, नन्द का काषाय ग्रहण, सर्ग 6– सुन्दरी का करूण विलाप, सर्ग 7– सुन्दरी के वियोग में नन्द का विलाप, सर्ग 8– एक श्रवण का नन्द को उपदेश, स्त्री निन्दा, स्त्री प्रसंग से निवृत्ति का उपदेश, सर्ग 9 अभिमान की निन्दा, संयम की शिक्षा, सर्ग 10 स्वर्ग दर्शन, सर्ग 11 स्वर्ग की निन्दा, सर्ग 12– बुद्ध द्वारा नन्द को विवेक का उपदेश, सर्ग 13 शील और इन्द्रिय संयम का महत्व, सर्ग 14– इन्द्रियजय के लिये आवश्यक कर्तव्य, सर्ग 15– मानसिक शुद्धि की विधि, सर्ग 16–चार आर्य सत्यों की व्याख्या, सर्ग 17– नन्द को अमृतत्व की प्राप्ति, सर्ग 18– आज्ञाव्यापकरण, उत्तम गुणों का उपदेश।

बुद्धचरित और सौन्दरनन्द :

अश्वघोष के महाकवित्व के क्रमिक विकास का सुन्दर निदर्शन बुद्धचरित और सौन्दरनन्द हैं। बुद्धचरित प्रथम महाकाव्य हैं। यद्यपि इसका भाव, दर्शन, अध्यात्म और आदर्श अनुपमेय है, तथापि भाव, भाषा, काव्य सौन्दर्य और लालित्य आदि की दृष्टि से उतना उच्च नहीं बन पड़ा है। कवि की प्रतिभा का निखार सौन्दरनन्द में परिलक्षित होता है। यद्यपि कहीं–कहीं अधिक वैयाकरण प्रयोग एवं व्याकरण पाण्डित्य प्रदर्शन अखरता है, तथापि भाव, भाषा एवं काव्य सौन्दर्य वस्तुतः कवि की उच्च कोटि की प्रतिभा का प्रकाशन करता है और यही काव्य कवित्व की दृष्टि से विशेष प्रशंसनीय है।

अश्वघोष की शैली :

अश्वघोष वैदर्भी रीति का कवि है। वह रामायण, महाभारत और कालिदास की शैली से अधिक प्रभावित हैं। अतः उसकी शैली में प्रसाद और माधुर्य का बाहुल्य है। उसका दर्शनशास्त्र और

व्याकरण पर असाधारण अधिकार है। अतः वह दर्शनों के सूक्ष्म तत्त्वों को अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में रखने में समर्थ है। व्याकरण के पाण्डित्य के कारण वह कहीं–कहीं शब्द चित्रों का सा चित्र उपस्थित कर देता है। कुछ स्थानों पर ऐसे क्रियापदों का प्रयोग किया है। जिनसे एक दो नहीं, अपितु चार–चार अर्थ निकलते हैं। (सौन्दर0 1–15)। कहीं–कहीं पर उसका व्याकरण ज्ञान कठपुतली का सा नृत्य प्रस्तुत करता है। (सौनर0 6–34)। वर्णनों में यथार्थता, सजीवता, स्वाभाविकता और चित्रात्मकता है। उसने अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त उपमा और अर्थान्तरन्यास अलंकारों का बहुत सुन्दरता से प्रयोग किया है। भाषा और भाव सौष्ठव प्रचुर मात्रा में है। संभोग और विप्रलम्भ श्रृंगार तथा करुण रस का मनोहर प्रतिपादन है। उसका शास्त्रीय ज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है।

भाषा सौष्ठव :

भावों के अनुसार भाषा में उतार–चढाव तथा संतुलित भाषा का प्रयोग अश्वघोष की विशेषता है। इसी भाषा–सौष्ठव के कारण कहीं–कहीं पर लयात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है। बुद्ध के उपदेश से प्रतिबुद्ध नन्द की अवस्था एक विरक्त भिक्षु की सी है। क्या ही सुन्दर भाषा में उसका वर्णन है।

न में प्रियं किंचन नाप्रियं में
न मेऽनुरोधोऽस्ति कुतो विरोधः।
तयोरभावात् सुखितोऽस्मि सद्यो
हिमातपाभ्यामिव विप्रमुक्तः।। – (सौन्दर. 17–67)

भावाभिव्यक्ति :

अश्वघोष ने कहीं–कहीं अत्यन्त मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है। शुद्धोधन की आत्म शुद्धि का सुन्दर वर्णन किया है कि उसने तीर्थ जल से शरीर को और गुणरूपी जल से मन को पवित्र किया। उसने वेदोक्त सोमरस का पान किया और हार्दिक सुख की रक्षा की।

सस्नौ शरीरं पवितुं मनश्च
तीर्थम्बुभिश्चैव गुणाम्बुभिश्च।

वेदोपदिष्टं सममात्मजं च
सोमं पपौ शान्तिसुखं च हार्दम्।। — (बुद्ध0 2–37)

5. किरातार्जुनीय महाकाव्यम् :

महाकवि भारवि द्वारा प्रणीत इस महाकाव्य में कौरवों पर विजय प्राप्ति के लिये अर्जुन का हिमालय पर्वत पर जाकर तपस्या करने, किरात वेषधारी शिव से युद्ध और प्रसन्न शिव से पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति की वर्णन है। सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है। सर्ग 1 दूत वनेचर का आकार युधिष्ठिर से मिलना, दुर्योधन के शासन प्रबन्ध का वर्णन तथा युधिष्ठिर द्रोपदी का कौरवों के प्रति कर्तव्य विषयक संवाद, सर्ग 2 युधिष्ठिर भीम का संवाद, व्यास का आगमन, सर्ग 3 युधिष्ठिर व्यास संवाद, व्यास का अर्जुन की पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति के लिये हिमालय पर जाने का आदेश, अर्जुन का प्रस्थान, सर्ग 4 शरद् वर्णन, सर्ग 5 हिमालय वर्णन, सर्ग 6 हिमालय पर अर्जुन की तपस्या, तपोविघ्नार्थ इन्द्र का अप्सराओं को भेजना, सर्ग 7 गन्धर्वो और अप्सराओं के विलासों का वर्णन, सर्ग 8 गन्धर्वो और अप्सराओं की उद्यान क्रीड़ा और जलक्रीड़ा, सर्ग 9 सायंकाल और चन्द्रोदय वर्णन, सुरत वर्णन तथा प्रभात वर्णन, सर्ग 10 वर्षादि वर्णन, अप्सराओं का चेष्टा वर्णन तथा उनका प्रयत्न वैकल्प, सर्ग 11 मुनि रूप में इन्द्र का आगमन, इन्द्र अर्जुन संवाद, इन्द्र का पाशुपत अस्त्र प्राप्त्यर्थ अर्जुन को शिवाराधना का उपदेश, सर्ग 12 अर्जुन की तपस्या, शूकर रूप में मूक दानव का अर्जुन वधार्थ आगमन, किरात वेषधारी शिव का आगमन, सर्ग 13 शूकररूपधारी मूक दानव पर शिव और अर्जुन के बाणों का प्रहार, वराह मृत्यु, बाण के विषय में शिव के अनुचर और अर्जुन का विवाद, सर्ग 14 सेना सहित शिव का आगमन और सेना के साथ अर्जुन का युद्ध, सर्ग 15 चित्र युद्ध वर्णन, सर्ग 16 शिव और अर्जुन का अस्त्र युद्ध, सर्ग 17 सेना के साथ अर्जुन का युद्ध, शिव और अर्जुन का युद्ध, सर्ग 18 शिव और अर्जुन का बाहु युद्ध, शिव का वास्तविक रूप में प्रकट होना, इन्द्रादि का आगमन, अर्जुन को पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति, इन्द्र आदि का अर्जुन को विविध अस्त्र देना, सफल मनोरथ अर्जुन का युधिष्ठिर के समीप पहुंचना।

भारवि की शैली एवं अथ गौरव :

महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान रत्नों में से एक है। उसका महाकाव्य बृहत्त्रयी का प्रथम रत्न है। भारवि भाषा, भाव, काव्य सौन्दर्य, रस परिपाक, वर्णन वैचित्र्य, अलंकार प्रयोग, विविध छन्दोयोजना और शास्त्रीय पाण्डित्य के सुन्दर निदर्शन हैं। उसकी भाषा में प्रौढता, ओज, प्रवाह और शक्तिमत्ता है। उसका शब्द संचय भावानुकूल है। भावानुसार कहीं प्रसाद है, कहीं माधुर्य और कहीं ओज। भाषा में शैथिल्य का नितान्त अभाव है। मनोभाव, उदात्त कल्पनाओं और गम्भीर विचारों का एक रत्नाकर ही है। अर्थ गाम्भीर्य और अर्थ गौरव की जितनी प्रशंसा की जाये, वह थोड़ी ही है। पद–पद पर अर्थ गौरव उसके वैदुष्य और गम्भीर चिन्तन का परिचायक है। भारवि ने प्रायः सभी रसों का अत्यन्त कुशलता के साथ प्रयोग किया है। श्रृंगार और वीर रस उसके अतिप्रिय रस है। इनके भेद और उपभेदों तक का सुललित भाषा में प्रयोग है। अलंकारों के प्रयोग में उसकी जादूगरी दर्शनीय है। 15वें सर्ग में चित्रालंकारों की बहु रंगी छटा इन्द्रधनुष की कान्ति को भी निष्प्रभ कर देती है। कहीं एक ही अक्षर वाले श्लोक हैं तो कहीं दो अक्षर वाले, कहीं पादादियमक है तो कहीं पादान्तादियमक, कहीं गोमूत्रिकाबन्ध है तो कहीं सर्वतोभद्र, कहीं एक ही श्लोक सीधा औ उल्टा एक ही होता है तो कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध एक ही है, कहीं दो पद समान है तो कहीं चारो पद एक ही हैं, कहीं आद्यन्त यमक है तो कहीं श्रृंखला यमक, कहीं निरोष्ठय्यवर्ण श्लोक है तो कहीं अर्धभ्रमक, कहीं द्वयर्थक और त्र्यर्थक श्लोक है तो कहीं चार वाले भी श्लोक है। (15–52)। वस्तुतः भारवि संस्कृत काव्यों में रीति शैली का जन्मदाता है। उसके ग्रन्थ के आरम्भ में 'श्री' शब्द तथा सर्गान्त श्लोकों में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग उसकी प्रमुख विशेषता है। माघ ने शिशुपाल वध में इसी शैली का अनुसरण किया है। भारवि का प्रकृति चित्रण, अन्तः प्रकृति और प्रकृति और बाह्य प्रकृति का चित्रण अत्यन्त मनोरम और प्रशंसनीय है। उसने विविध छन्दों का प्रयोग करके अपनी छन्दोयोजना सम्बन्धी दक्षता प्रदर्शित की है। उसका काव्य सौन्दर्य 'नारिकेलफलसंमितम्' माना गया है, जो

बाहर कठोर, किन्तु अन्दर अत्यन्त मधुर है। वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, नीति, राजनीति, ज्योतिष, भूगोल, कृषि और कामशास्त्र आदि से संबद्ध वर्णन उसके अगाध पाण्डित्य के सूचक हैं। 'भारवेरर्थगौरवम्', 'भा रवेरिव भारवेः', 'प्रकृतिमधुरा भारविगिरः' आदि सूक्तियाँ वस्तुतः कवि की गरिमा को प्रकट करती है।

भाषा सौष्ठव :

भारवि की भाषा में लालित्य, माधुर्य और प्रौढ़ता का सुन्दर समन्वय है। प्रसंग और भाव के अनुकूल शब्दावली का सर्वत्र प्रयोग है। कहीं–कहीं व्याकरण के कठिन रूपों का भी अति दक्षता के साथ प्रयोग किया गया है। तपस्या के लिये जाते समय द्रोपदी से विदाई लेते अर्जुन का कितना सुन्दर वर्णन है–

अकृत्रिप्रेसरसाभिरामं
रामार्पितं दृष्टिविलोभिदृष्टम्।
मनः प्रसादांजलिना निकामं
जग्राहपाथेयमिवेन्द्रसूनुः।। – (कि0 3–37)

6. शिशुपालवध महाकाव्यम् :

महाकवि माघ द्वारा विरचित इस महाकाव्य में देवर्षि नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्व जन्मों का विवरण देते हुए उसके अत्याचारों का उल्लेखन, श्रीकृण से उसके संहार की प्रार्थना, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृण का इन्द्रप्रस्थ पहुंचना, शिशुपाल का अभद्र व्यवहार और क्रुद्ध श्रीकृष्ण द्वारा उसका वध वर्णित है। सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है–

सर्ग 1 देवर्षि नारद का आगमन, श्रीकृष्ण द्वारा उनका सत्कार, नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्व जन्मों और उसके अत्याचारों का वर्णन तथा श्रीकृष्ण को इन्द्र का सन्देश सुनाना और उन्हें शिशुपाल के वधार्थ उद्यत करना, सर्ग 2 श्रीकृष्ण, बलराम और उद्धव की गुप्त मंत्रणा, बलराम की शिशुपाल के वधार्थ तुरन्त अभियान की सलाह, नीतिज्ञ उद्धव का इस विषय में अधिक शीघ्रता न करके युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भाग लेने का परामर्श, सर्ग 3 द्वारका से श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ के लिये प्रस्थान,

द्वारका, सेना और समुद्र का वर्णन, सर्ग 4 रैवतक पर्वत का वर्णन, सर्ग 5 रैवतक पर्वत पर सैन्य शिविर का संस्थापन, सर्ग 6 षड्ऋतु वर्णन, सर्ग 7 वन विहार वर्णन, सर्ग 8 जलक्रीड़ा वर्णन, सर्ग 9 सायंकाल चन्द्रोदय श्रृंगार विधानादि वर्णन, सर्ग 10 पान गोष्ठी वर्णन और रात्रि क्रीड़ा वर्णन, सर्ग 11 प्रभात वर्णन, सर्ग 12 श्रीकृष्ण के पुनः प्रस्थान और यमुना नदी का वर्णन, सर्ग 13 श्रीकृष्ण और पाण्डवों का मिलन, श्रीकृष्ण का नगर प्रवेश, दर्शक नारियों की विलासपूर्ण चेष्टायें, सर्ग 14 युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव, श्रीकृष्ण की पूजा और भीष्म द्वारा उनकी स्तुति, सर्ग 15 शिशुपाल का क्रुद्ध होना और उसके पक्ष के राजाओं का युद्धार्थ तैयार होना, सर्ग 16 शिशुपाल के दूत का श्रीकृष्ण की सभा में उभयार्थक वाक्यों का प्रयोग, सात्यकि द्वारा उसका उत्तर तथा पुनः दूत का उत्तर और उसके द्वारा शिशपाल के पराक्रम का वर्णन, सर्ग 17 श्रीकृष्णपक्षीय राजाओं का अत्यन्त क्रुद्ध होना, श्रीकृष्ण की सेना की तैयारी और उसका प्रस्थान, सर्ग 18 दोनों सेनाओं का साक्षात्कार और घोर युद्ध का वर्णन, सर्ग 19 चित्रालंकारयुक्त श्लोकों से विचित्र व्यूह रचना एवं युद्ध का वर्णन, सर्ग 20 श्रीकृष्ण और शिशुपाल का शस्त्र युद्ध, दिव्यास्त्र युद्ध, वाग्युद्ध, शिशुपाल के अपशब्दों से क्रुद्ध श्रीकृष्ण द्वारा सुदर्शनचक्र से शिशुपाल का शिरश्छेदन।

माघ की शैली :

महाकवि माघ संस्कृत काव्य जगत के अनर्घ रत्नों में एक हैं। उसका महाकाव्य 'शिशुपालवध' बृहत्त्रयी का द्वितीय रत्न है। इसमें महाकाव्य के सभी गुण उत्कृष्ट मात्रा में उपलब्ध होते हैं। माघ ने अपने पूर्ववर्ती सभी कवियों के उत्कृष्ट गुणों का समन्वय किया है। उसने कालिदास के काव्य सौन्दर्य, भारवि के अर्थ गौरव और भट्टि से व्याकरण पाटव का संकलन किया है। माघ की विशेषता यह है कि उसने तीनों गुणों का मणि कांचन संयोग प्रस्तुत किया है। उसमें एक ओर काव्य निपुणता का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर व्याकरण पटुता का, एक ओर कलापक्ष की प्रचुरता तो दूसरी ओर भावपक्ष की, एक ओर वीर रस का निरूपण है तो दूसरी ओर श्रृंगार का, एक ओर राजनीति का

उपदेश है तो दूसरी ओर दर्शन दिग्दर्शन, एक ओर अर्थालंकारों की सुन्दर छटा है तो दूसरी ओर चित्रालंकारों की सप्तरंगी प्रभा, एक ओर कोमल कान्त पदावली है तो दूसरी ओर दुर्बोध वाग्जाल। उसकी भाषा में परिष्कार, लालित्य, प्रवाह और आसाधारण लोच है। भाषा में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है। भाषा सबल, पुष्ट और सुसंघटित है। भावाभिव्यक्ति और कल्पना की ऊँची उड़ान में माघ ने अपने पूर्ववर्ती कवियों को तिरस्कृत कर दिया है। माघ का काव्य सौन्दर्य सभी कवियों के लिये अनुकरणीय और प्रशंसनीय रहा है। इसमें प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणों का संतुलित सामंजस्य है। उपमा, अर्थगौरव और पद लालित्य, इन तीनों गुणों की प्रचुरता के कारण 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः, उक्ति कवि वृन्द में बहुश्रुत है। यद्यपि माघ में अर्थालंकारों का सामान्यतया तथा अनेक स्थानों पर श्रमसाध्य प्रयोग भी किया है। तथापि चित्रालंकारों की श्रम साध्यता को देखकर अर्थालंकारों के प्रयोग अभिभूत हो जाते हैं। माघ ने भारवि और भट्टि की होड़ में एकाक्षरपाद, एकाक्षर, द्वयक्षर, गोमूत्रिका बन्ध, मुरजबन्ध, चक्रबन्ध, अर्घभ्रमक, सर्वतोभद्र, अनुलोम प्रतिलोम, असंयुक्ताक्षर, अतालव्य, गूढ चतुर्थ, द्वयर्थक, त्र्यर्थक आदि अनेक प्रकार के श्लोक 19वें सर्ग में दिये हैं, जिनकी विचित्रता और चमत्कृति ने विश्व के सभी आलोचकों को चमत्कृत किया है। माघ ने अर्थालंकारों में उपमा और अर्थान्तरन्यास को बहुत महत्व दिया है। इनके अतिरिक्त उसने उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक, विरोधाभास, दृष्टान्त, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक और सन्देह आदि अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। माघ की बहुज्ञता पद-पद पर प्रकट होती है। वेद, व्याकरण, काव्य शास्त्र, दर्शन, संगीत, ज्योतिष, आयुर्वेद, नीति, राजनीति, पुराण, कामशास्त्र, नाट्यशास्त्र, चित्रकला, हस्तिविद्या, अश्वविद्या आदि का गहन अध्ययन उसके महाकाव्य से लक्षित होता है। भारवि ने जिस रीति सम्प्रदाय का काव्यों में प्रवर्तन किया था, उसकी परिणति माघ में मिलती है। माघ की कला में सुन्दर नर्तकी का सा हाव-भाव, विलास, लोच, माधुर्य और मनोरमता है। कहीं पद संचार में मनोहारिता है तो कहीं रति विलास में भावुकता, कहीं नीति वचनरूपी कटाक्ष हैं तो कहीं सरस शब्दों का माधुर्य,

कहीं भाव भंगिता है तो कहीं मधुर अंग संचार। अतएव रसिक सहृदयों का कथन है कि 'मेघे माघे गतं वयः'।

माघ ने कहीं–कहीं पर अपनी अपूर्व कल्पना का परिचय दिया है। निदर्शना अलंकार का उपयोग करते हु ए रैवतक पर्वत के एक ओर सूर्योदय और दूसरी ओर चन्द्रास्त को देखकर महाकाव्य हाथी के दोनों ओर लटकते हुए दो विशाल घंटों की कल्पना कवि ने की है। इस कल्पना की उत्कृष्टता के आधार पर माघ का नाम ही घण्टामाघ' पड़ गया।

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जा
बहिमरुचौ हिमधाम्नियाति चास्तम् ?
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा
द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलम्।। – (शि0 4–20)

माघ ने शिशुपालवध के प्रथम 9 सर्गो में अपने अक्षय शब्दकोष का पूर्ण प्रदर्शन किया है। उसने प्रयत्नपूर्वक एक भाव या अर्थ के लिये प्रत्येक सीान पर नया शब्द दिया है। इस प्रकार 9 सर्गो में विशाल शब्दराशि तैयार हो जाती है। इसी वैशिष्ट्य के आधार पर कहा गया है कि–

'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते'।

काव्य के सौन्दर्य और रमणीयता का मानदण्ड माघ ने नित नवीनता को माना है, अतएव उसके काव्य में भी नवीन विधाओं का प्रयोग और उपयोग हे।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः। – (4–17)

भाषा सौष्ठव :

माघ की भाषा में पाण्डित्य के साथ ही परिष्कार है, कोमलता के साथ माधुर्य है, ओज के साथ सशक्तता है और अर्थ गाम्भीर्य के साथ स्फूर्ति भी है। कहीं प्रसाद गुण है, कहीं समास बहुलता, कहीं पद माधुरी और कहीं अभिव्यक्ति चातुरी। पदमाधुरी के साथ स्वर माधुरी का एक सुन्दर उदाहरण देखिये–

या न ययौ प्रियमन्यवधूभ्यः
सारतरागमना यतमानम्।

तेन सहेह विभर्ति रहः स्त्री
सा रतरागमनायतमानम्।। — (4–45)

7. नैषधीयचरित महाकाव्यम् :

महाकवि श्रीहर्ष की इस अमर रचना में 22 सर्ग हैं। 13 (56 श्लोक) और 19 (67 श्लोक) सर्ग को छोड़कर शेष सभी सर्गो में 100 से अधिक श्लोक हैं। कई सर्गो में 150 से अधिक श्लोक हैं। सर्ग 17 में श्लोक संख्या 222 हो गयी है। इसमें नल दमयन्ती के प्रणय से लेकर परिणय (विवाह) तक का सांगोपांग वर्णन है। सर्गानुसार कथा इस प्रकार है–

सर्ग 1 नल और दमयन्ती का एक दूसरे के गुणों को सुनकर परस्पर आकृष्ट होना। नल का वन विहार, एक हंस को पकड़ना, दयार्द्र होकर उसे छोड़ना, सर्ग 2 हंस का कृतज्ञताज्ञापन और दमयन्ती का गुणानुवाद। नल के आग्र पर हंस का दमयन्ती के पास कुण्डिनपुरी जाना, सर्ग 3 हंस का दमयन्ती के सामने नल का गुणानुवाद, दमयन्ती की नल के प्रति अनुरक्ति और हंस का नल के पास लौटना, सर्ग 4 दमयन्ती की विकलता का भावपूर्ण वर्णन तथा पिता भीमसेन द्वारा स्वयंवर का निर्णय, सर्ग 5 इन्द्र, अग्नि, यम और वरूण का नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना, सर्ग 6 अदृश्य नल का दमयन्ती के यहां पहुंचना और उसका सौन्दर्य देखना, सर्ग 7 दमयन्ती का नखशिख वर्णन, सर्ग 8 नल का प्रकट होकर देवों का सन्देश दमयन्ती को सुनाना और चारों देवों में से किसी एक को चुनने का आग्रह करना, सर्ग 9 नल दमयन्ती का वार्तालाप, दमयन्ती का देवों में से किसी को न वरण करने का निश्चय और नल को विवाहार्थ राजी करना, सर्ग 10 स्वयंवर विवरण, दमयन्ती का स्वयंवर वर्णन, सर्ग 11 और 12 सरस्वती के द्वारा राजाओं आदि का परिचय दिया जाना, सर्ग 13 चार देवता और नल (पंचनली) का सरस्वती द्वारा श्लेषयुक्त वर्णन, सर्ग 14 देवों की स्वीकृति से दमयन्ती का नल को वरण करना और देवों का आशीर्वाद देना, सर्ग 15 विवाह की तैयारी सर्ग 16 विवाह संस्कार आदि, ज्योनार (विशेष वैवाहिक भोजन) आदि का वर्णन, 6 दिन रूककर नल का अपनी राजधानी पहुंचना, सर्ग 17 देवों का लौटते समय कलि से मिलना, कलि के मुंह से चार्वाक

सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन, देवों द्वारा चार्वाक सिद्धान्त खण्डन, कुद्ध कलि का नल को राज्यच्युत तथा दमयन्ती से वियुक्त करने का शाप, सर्ग 18 नल दमयन्ती का प्रथम मिलन तथा काम क्रीड़ा वर्णन, सर्ग 19 से 22 चार सर्गों में नल दमयन्ती की दिनचर्या, देवस्तुति, चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि का वर्णन, नल दमयन्ती का विलास वर्णन तथा कवि वृत्त वर्णन से समाप्ति।

श्रीहर्ष की शैली एवं काव्य सौष्ठव :

श्रीहर्ष संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य महाकवियों में एक है। इनका नैषधीयचरित महाकाव्य ही इनके गुण गौरव और विद्वता का आकार है। पाण्डित्य प्रदर्शन, योग्यता, विद्वत्ता और व्युत्पत्ति में श्रीहर्ष ने सभी महाकवियों को पीछे छोड़ दिया है। अतएव नैषधीयचरित बृहत्त्रयी का सर्वोत्कृष्ट रत्न माना जाता है।

इसमें एक ओर भाषा सौन्दर्य है तो दूसरी ओर भाव सौष्ठव, एक ओर पद लालित्य है तो दूसरी ओर स्वर माधुर्य, एक ओर प्रसाद गुण है तो दूसरी ओर ओज, एक ओर वैदर्भी की छटा है तो दूसरी ओर गौड़ी का चमत्कार, एक ओर उत्प्रेक्षाओं का बाहुल्य है तो दूसरी ओर अर्थान्तरन्यास का वैभव, एक ओर कलापक्ष की प्रधानता है तो दूसरी ओर भाव पक्ष की उदारता, एक ओर कल्पनाओं का प्राचुर्य है तो दूसरी ओर चिन्तन की विशालता, एक ओर श्रृंगार की रस क्रीड़ायें हैं तो दूसरी ओर करुण का द्रवीगण। श्रीहर्ष ने संस्कृत काव्यों के रीतिकाल में द्वयर्थक या त्र्यर्थक पद्य रचना की एक नई विधा को जन्म दिया है। इसके आधार पर राघवपाण्डवीयम्, राघवनैषधीयम् आदि द्वयर्थक काव्यों की रचना हुई। पंचनली प्रसंग में श्रीहर्ष ने इस प्रकार के द्वयर्थक से लेकर पांच अर्थ वाले श्लोकों की रचना की है। श्रीहर्ष की कल्पना शक्ति अत्यन्त उर्वर है। वह बात की बात में धरती और आकाश को एक कर देता है। उसकी कल्पनाओं की कोई सीमा नहीं है। श्रीहर्ष की अन्य विशेषता यह है कि उसने पुरातन पद्धति का अन्धानुकरण नहीं किया है। उसने कालिदास से प्रसाद गुण नहीं, अपितु कल्पना, भारवि से चित्रालंकार आदि नहीं, अपितु अर्थगौरव और माघ से कथा शैथिल्य नहीं, अपितु पाण्डित्य प्रदर्शन एवं वाग्वैशारद्य आदि गुणों को अपनाया है। श्रीहर्ष का काव्य सरस,

सहृदय एवं व्युत्पन्न पाठकों के लिये शस्य श्यामल, कुसुमित एवं सुरभित उद्यान है, किन्तु पल्लवग्राही, अव्युत्पन्न, अरसिक एवं कोमल बुद्धि पाठकों के लिये नीरस एवं कण्टकांचित कान्तार है। यदि भारवि की सौर कान्ति को माघ के माघ मास ने निष्प्रभ कर दिया है तो श्रीहर्ष की वासन्ती सुषमा ने माघ के कम्प को भी निरस्त कर दिया है। अतएव कहा गया है–

तावद् भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये, क्व माघः क्व च भारविः।।

श्रीहर्ष के प्रौढ पाण्डित्यपूर्ण काव्य के पण्डित मण्डली को यह कहने के लिये बाध्य कर दिया कि नैषधं विद्वदौषधम्, नैषध विद्वानों के लिये टॉनिक है।

भाषा :

श्रीहर्ष की भाषा में प्रौढ़ता के साथ परिष्कार है। उनकी भाषा में दुरूह से दुरूह भावों को प्रकट करने की असाधारण क्षमता है। भाषा प्रांजल, सरस, प्रवाहयुक्त, ध्वन्यात्मक और लयात्मक है। भावों के अनुसार भाषा में उतार चढाव है। रसानुगुण भाषा में प्रसाद, माधुर्य या ओज गुणों का समन्वय है। कहीं–कहीं पर लम्बे समास, अप्रचलित शब्द, दुरूह वैयाकरण प्रयोग, श्लिष्ट शब्दावली का बाहुल्य और कर्मवाच्य प्रयोगों की प्रचुरता मिलती है।

भाषा में माधुर्य, लयात्मकता, भाववैशद्य और संगीतात्मकता का एक सुन्दर समन्वय प्रस्तुत है–

इत्थममुं विलपन्तममुंचद्
दीनदयालुतयाऽवनिपालः।
रूपमदर्शि धृतोऽसि यदार्थ
गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय।। – (नै0 1–143)

8. भट्टिकाव्यम् :

भट्टि की केवल एक रचना प्राप्त होती है। इसका नाम 'रावण वध' है। परन्तु प्रचलित नाम 'भट्टिकाव्य' ही हे। इसमें 22 सर्ग और 1624 श्लोक है। इसमें राम जन्म से लेकर लंका विजय और राम राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। यह काव्य 4 भागों

में विभक्त है– 1. प्रकीर्णकांड– इसमें 1 से 5 सर्ग हैं। इसमें राम जन्म से लेकर सीताहरण तक की कथा है। इसमें कृत प्रत्ययों का मुख्यतया वर्णन है। 2. अधिकार काण्ड– इसमें 6 से 9 सर्ग तक हैं। इसमें बालि वध, सुग्रीव राज्याभिषेक, अशोक वनदाह, हनुमान निग्रह का वर्णन है। इसमें लुड़, कृत, षत्व, णत्व, कारक, आत्मनेपद आदि का वर्णन है। 3. प्रसन्नकाण्ड– सर्ग 10 से 13 तक। इसमें सीताभिज्ञान दर्शन, विभीषण आगमन, सेतुबन्ध का वर्णन है। इसमें शब्दालंकार, अर्थालंकार, माधुर्य और भाविक का वर्णन है। सर्ग 13 में संस्कृत और प्राकृत दोनों के समशब्दों का प्रयोग है। 4. तिड़न्तकाण्ड– 14 से 22 सर्ग तक। इसमें क्रमशः 9 सर्गो में लिट्, लृट्, लुड़, लड़, लिड़, लोट्, लृड़ और लुट् इन 9 लकारों का प्रयोग सिखाया गया है। इसमें युद्ध, रावणवध, विभीषण राज्याभिषेक और रामराज्याभिषेक का वर्णन है।

भट्टि का समय :

वलभी में श्रीधरसेन के समय में भट्टिकाव्य की रचना हुई है। अतः भट्टि श्रीधरसेन का समकालीन है। वलभी में श्रीधरसेन नाम के चार राजा हुए हैं। इनका जन्म 500 ई0 से 641 ई0 तक है। इनमें से श्रीधरसेन द्वितीय के 610 ई0 के एक शिलालेख में भट्टि नामक एक व्यक्ति को भूमि देने का उल्लेख है। यदि इसी व्यक्ति को भट्टि कवि माना जाये तो उसका समय 610 ई0 के लगभग सिद्ध होता है। इस प्रकार भट्टि का समय 6वीं शताब्दी ई0 का उत्तरार्ध और 7वीं ई0 का प्रथम चरण उचित प्रतीत होता है। हमारे विचार से भट्टि का समय 550 ई0 से 610 के बीच है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि भामह (लगभग 620 ई0) ने भट्टि के निम्नलिखित श्लोक को रूपान्तर से प्रयुक्त किया है।

भट्टि– व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सवः सुधियामलम्।
लता दुर्मेधसश्चास्मिन्विद्वत्प्रियतयामया।। – (22–34)

भामह– काव्यान्यपि यदीमानि, आख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवः सुधियामेव, हन्त दुर्मेधसो हताः।

भट्टि की शैली एवं काव्य सौन्दर्य :

भट्टि का लक्ष्य यद्यपि व्याकरण शिक्षण है और उसने व्याकरण की क्रमिक शिक्षा दी है, तथापि उसमें कवित्व और भाव

पक्ष की न्यूनता नहीं है। उसमें एक ओर कालिदास की सी सरसता, सरलता और सहृदयता है तो दूसरी और भारवि का सा पाण्डित्य और चित्रालंकार प्रयोग। व्याकरण मूलक काव्यशैली की एक नवीन विधा को जन्म देने का श्रेय भट्टि को है। भट्टि में वर्णन की अपूर्व क्षमता है। व्याकरण जैसे विषय को लेते हुए प्रबन्ध काव्य की रचना का सफलतापूर्वक निर्वाह कर जाना भट्टि के लिये ही संभव है। आलोचकों ने उस पर कृत्रिमता, आडम्बर, जटिलता और नीरसता के अनेक आरोप लगाये हैं, परन्तु ये आरोप वस्तुस्थिति से दूर हैं। भट्टि काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यदि वह एक स्थान पर रूखा है तो दूसरे स्थान पर अत्यन्त सरस। यदि कहीं लुड् और लिट् के प्रयोग नीरसता लाते हैं तो भाषा सम के प्रयोग सरल कविता का रसास्वाद कराते हैं। यदि कहीं व्याकरण की जटिलता से मन ऊबता है तो अन्यत्र अलंकारों की सुन्दर झंकार से पाठक आह्लादित हो उठता है। वस्तुतः भट्टि स्वयं विरोधाभास के उदाहरण है। वे न कोरे वैयाकरण है और न कोरे साहित्यिक। वे नर सिंहावतार के तुल्य खर और कोमल दोनों हैं।

व्याकरण ज्ञान के लिये यह महाकाव्य दीपक के तुल्य है। अन्यथा मनुष्य शब्दशास्त्र में अन्धवत् रहता है।

दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तामर्ष इवान्धानां भवेद् व्याकरणादृते।। – (22–33)

9. जानकीहरण महाकाव्यम् :

कुमारदास की केवल एक ही कृति 'जानकीहरण' महाकाव्य प्राप्त होता है। इसमें 20 सर्ग थे, कुछ विद्वानों के मतानुसार 25 सर्ग थे। पूरा ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। इस गन्थ के 2 संस्करण प्रकाशित हुए हैं। एक में केवल 10 सर्ग हैं और जानकीहरण तक की कथा है। दूसरे में 15वें सर्ग के 22 श्लोक तक का ही अंश मिलता है। इसके 20 सर्गो में दशरथ राज्य वर्णन से लेकर रावण पर राम विजय तक की कथा वर्णित है।

कुमारदास की शैली एवं काव्यवैशिष्ट्य :

कुमारदास वैदर्भी शैली के कवि हैं। इनकी रचना पर कालिदास का बहुत प्रभाव है। रघुवंश और कुमारसंभव की

पदावलि तथा वाक्य विन्यास को यत्र तत्र स्पष्ट अनुकरण मिलता है। भाषा में सरलता, सरसता, प्रवाह और प्रांजलता है। भावों में सहृदयता और सुकुमारता सर्वत्र व्याप्त है। वर्णनों में विविधता और व्यापकता है। अलंकारों के लिये अलंकारों का प्रयोग नहीं है। तथापि अनुप्रास, यमक और अर्थान्तरन्यास अधिक मात्रा में प्राप्य है। शब्द सौष्ठव, छन्दों की लयात्मकता और नाद माधुर्य के कारण इनकी शैली में मनोहरता है।

कुमारदास की भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण हैं। प्रायः सरल पदावली है, किन्तु आवश्यकतानुसार दीर्घ समासयुक्त ओजगुण भी है। भाषा सौष्ठव, नादमाधुर्य और अलंकृत पदावली के कुछ उदाहरण देखिये–

ततः सलीलं सलिनं विभिन्द
न्नेवं वन्नेव वरागंनाभिः।। – (जा0 3–32)

याते च रामे नयनाभिरामे
दृष्टवा दिशः किं फलमस्ति शून्याः।। – (जा. 7–24)

सारगांक्षि शरस्तस्य केवलं तु खरे खरः।
दूषणे दूषणो भद्रे न त्रिलोक्या विभौ रणे।। –(जा0 10–81)

10. हरविजयमहाकाव्यम् :

संस्कृत साहित्य के विशालतर महाकाव्य हरविजय के रचयिता महाकवि रत्नाकर हैं। इनकी जन्मभूमि कश्मीर थी। इनके पिता का नाम अमृतभानु था। ये काश्मीर के राजा चिप्पट जयापीठ (779–813 ई0) के आश्रित कवि थे। कल्हण ने राजतरंगिणी में उल्लेख किया है कि राजा अवन्ति वर्मा (855–844 ई0) के राज्यकाल में रत्नाकर की कीर्ति फैली।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः।। – (5–39)

रत्नाकर का प्रमुख ग्रन्थ 'हरविजय' महाकाव्य है। इसके अतिरिक्त उनके दो ग्रन्थ और हैं। वक्रोक्तिपंचाशिका और ध्वनिगाथापंजिका। हरविजय संस्कृत साहित्य का सबसे विशालकाय ग्रन्थ है। इसमें 50 सर्गो में 4321 श्लोक हैं। इसमें

शिव से अन्धकासुर के जन्म का वर्णन है और अन्धकासुर के संहार से कथा समाप्त होती है। इसमें कथा छोटी है, अतः कथा प्रवाह नहीं के बराबर है। बीच में अन्य प्रसंग कई–कई सर्गो में फेले हुए हैं। जैसे– 11 सर्गो में अन्धकासुर के वधार्थ शिव के मन्त्रियों का परामर्श, 13 सर्गो में शिव के गणों का विहार, 7 सर्गो में शिव दूत और अन्धकासुर का संवाद और 4 सर्गो में शिव सेना की तैयारी वर्णित है। रत्नाकर ने बाण का समकक्ष होने का दावा किया है। उसने अपने काव्य को 'चन्द्रार्धचूडचरिताश्रयचारू' कहा है तथा भारवि एवं माघ के 'लक्ष्मी' और 'श्री; शब्द के अनुकरण पर प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'रत्न' शब्द का प्रयोग किया है।

रत्नाकर रीतिवादी कवि हैं। कहीं भाषा में प्रसाद और माधुर्य है तो कहीं क्लिष्ट बन्ध, कहीं सरलता है तो कहीं पाण्डित्य प्रदर्शन, कहीं उपमा उत्प्रेक्षा आदि हैं तो कहीं चित्रालंकारों के नवीनता प्रयोग, कहीं श्रृंगार प्रधान है तो कहीं वीर, कहीं काव्यशास्त्र प्रधान है तो कहीं दर्शनशास्त्र, कहीं राजनीति विमर्श है तो कहीं कामशास्त्र समीक्षा। भारवि और माघ के अनुकरण पर चित्रालंकारों के प्रयोग में असाधारण दक्षता है। रत्नाकर ने मुराजबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध, सर्वतोभद्र आदि ही नहीं दिया है, अपितु आवलिम्बन्ध, तूणीबन्ध, कांचीबन्ध, पद्मबन्ध आदि नये चित्रालंकार भी दिये हैं। भारवि और माघ में केवल अनुष्टुप् में द्वयक्षर पाद या श्लोक दिये हैं। परन्तु रत्नाकर ने शार्दूविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता आदि बड़े छूदों में भी इसका सफल प्रयोग किया है। रत्नाकर का दार्शनिक पाण्डित्य पद–पद पर दृष्टिगोचर होता हैं। कवि ने प्रयत्न किया है। कि महाकाव्य के सभी लक्षणों का सर्वांगपूर्ण वर्णन हो। चित्रकला, संगीत और नृत्य का वैज्ञानिक विश्लेषण और विवेचन होने केकारण यह ग्रन्थ बहुमूल्य है।

रत्नाकर को उत्प्रेक्षा अलंकार बहुत प्रिय है। चोट पर पट्टी बांधने की उत्प्रेक्षा अनेक स्थानों पर है। मन्थन से व्याकुल समुद्र के भी पट्टी बांधी गई है।

आकृष्टि वेग विगलद्भुजगेन्द्रभोग
निर्मोकपट्ट परिवेष्टनयाऽम्बुराशेः।

मन्थ व्यथाव्युपशमार्थमिवाशु यस्य
मन्दाकिनी चिरमवेष्टत पादमूले।।

शिवस्तुति में सांख्य के मतानुसार पुरूष का प्रतिपादन है।

प्रकृतेः पृथक् प्रकृतिशून्यतां गतः
प्रतिषिद्धवस्तुगतधर्मनिष्क्रियः।
पुरूष त्वमेव किल पंचविंशकः
स्फुचूलिकार्यवचनैर्निगद्यते।।

कवि ने ग्रन्थ में प्रतिज्ञा की है कि इस काव्य को पढने वाला अकवि भी कवि हो जायेगा और कवि महाकवि। उनका उद्देश्य अवश्य प्रशंसनीय है।

हरविजयमहाकवेः प्रतिज्ञां
श्रृणुत कृतप्रणयो मम प्रबन्धे।
अपि शिशुरकविः कविः प्रभावाद्
भवति कविश्च महाकविः क्रमेण।।

कवि ने अपने ग्रन्थ के विषय में गर्वोक्ति की है क इसमें प्रसाद, माधुर्य, ओज, लालित्य, श्लेष, यमक और चित्रालंकार सभी कुछ हैं।

ललितमधुराः सालंकाराः प्रसादमनोहरा
विकटयमकश्लेषोद्धारप्रबन्धनिरर्गलाः।
असदृशमतीश्चित्रे मार्गे मयोद्गिरतो गिरो
न खलु नृपते चेतो वाच्स्पतेरपि शंकते।।

रत्नाकर की रचना से प्रसन्न होकर राजशेखर ने कहा कि ब्रह्मा चार रत्नाकरों (समुद्रों) से सन्तुष्ट नहीं हुए, अतएव उन्होंने पांचवां रत्नाकर (कवि) उत्पन्न किया।

मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे।

इतीव सत्कृतो धात्रा कवी रत्नाकरोऽपरः।।

अन्य महाकवि :

उक्त महाकवियों के अतिरिक्त संस्कृत में काव्यों और महाकाव्यों के रचयिताओं की वृहत् परम्परा है। इनमें से कुछ

कवियों के नाममात्र ज्ञात हैं, कुछ के काव्य लुप्तप्राय हैं, अज्ञात हैं या अप्रकाशित हैं। इनमें से कुछ सुप्रचलित हैं, कुछ अप्रचलित और कुछ उद्धरणों आदि में निर्दिष्ट। कुछ कवियों ने अनेक काव्य ग्रन्थ लिखे हैं। उनके नाम के आगे प्रमुख काव्यों का निर्देश है और नीचे सारणी में ग्रन्थ संख्या दे दी गई है। बहुत से कवियों का समय अर्निणीत हैं, अतः आनुमानिक समय ही दिया गया है। कहीं–कहीं समय निर्धारण में इतना मतभेद है कि सैकड़ों वर्षो का अन्तर है। सारणी में निर्दिष्ट समय संबद्ध काव्य का रचनाकाल समझा जाना चाहिये।

सारणी में निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग किया गया है– 1. विशेष शीर्षक में वर्ण्य विषय या कथानक जिससे सम्बद्ध है, उसका नाम–निर्देश है। सर्गो की संख्या के लिये केवल अंक है। अ0 = अध्याय। 2. समय शीर्षक में ल = लगभग, पू0 = पूर्वार्ध, उ0 = उत्तरार्ध, सं0 = सन्धिकाल, ई0 = ईसवीय सन, ई0पू0 = ईसा पूर्व, श0 = शताब्दी।

कवि सामान्य	कवि काव्य	समय	विशेष
1. पाणिनी	जाम्बवतीविजय (पातालविजय)	5वीं श0ई0पू0	कृष्ण जाम्बवती
2. कात्यायन	स्वर्गरोहण	4 र्थ श0 ई0पू0	(वररूचि)
3. पंतजलि	महानन्द काव्य	150ई0पू0	महानन्द
4. हरिषेण	प्रयाग प्रशस्ति	345ई0	समुद्रगुप्त
5. प्रवरसेन	सेतुबन्ध	4र्थ श0ई0	रामकथा, 15अ0
6. भर्तृमेण्ठ	हयग्रीववध	430ई0	
7. वत्सभट्टि	मन्दोसोर लेख	472ई0	
8. वाक्पति	गउडवहो	740ई0	यशोवर्मन्, प्राकृत
9. शंकुक	भुवनाभ्युदय	850 ई0	मम–उप्पल
10. नीतिवर्मा	कीचक वध	9वीं श0ई0	भीम कीचक
11 अभिनन्द	रामचरित	9वीं पू0	रामकथा, 36 सर्ग
12. वासुदेव	युधिष्ठिर विजय	900ई0	युधिष्ठिर, 8 सर्ग

	त्रिपुर दहन शौरिकथोदय		शिव, 3 कृष्णकथा, 6
13. हलायुध	कविरहस्य	10वींउ0 ई0	राजा कृष्ण
14. अभिनन्द	कादम्बरीकथासार	950 ई0	कादम्बरी, 8
15. पद्यगुप्त	नवसाहसांकचरित	1005 ई0	भोज राजा, 18
16. लोलिम्बराज	हरिविलास	1050 ई0	कृष्णकथा, 5
17. कृष्णलीलाशुक (बिल्वमंगल)	गोविन्दाभिषेक (श्रीचिह्नकाव्य)	12वीं श0 ई0	कृष्ण कथा, 12
18. शंकराध्य	वसवेश विजय	1150 ई0	वसव कथा
19. सोमनाथ	पण्डिताराध्यचरित	1150 ई0	पण्डिताराध्य कथा
20 कवि कर्णपूर (कविराज)	पारिजातहरण	1185 ई0	कृष्ण कथा, 18
21. चण्ड कवि	पृथ्वीराज विजय	1200 ई0	पृथ्वीराज, 8
22. वस्तुपाल	नरनारायणानन्द	1220 ई0	नर–नारायण, 16
23. अरिसिंह	सुकृत संकीर्तन	1221 ई0	वस्तुपाल, 11
24. माघवाचार्य	यमक भारत	1225 ई0	महाभारत कथा
25. अमरचन्द्र	बालभारत	1260 ई0	महाभारत कथा
26. त्रिविक्रम	उषाहरणा काव्य	1260 ई0	उषा–अनिरुद्ध
27. नारायण	पारिजात हरण	1280 ई0	यमक काव्य
28. विद्या चक्रवर्ती	रूक्मिणी कल्याण	1300 ई0	कृष्ण रूक्मिणी, 16
29. कृष्णानन्द	सहृदयनन्द	1300 ई0	नलकथा, 15
30. अगस्त्य	बालभारत	1300 ई0	महाभारतकथा, 20
31. वेंकटनाथ (वेदांतदेशिक)	यादवभ्युदय (120 ग्रन्थ)	1300 ई0	कृष्ण कथा, 24
32. नयचन्द्र	हम्मीर काव्य	1310 ई0	हम्मीर, 17
33. वासुदेव नलोदय	युधिष्ठिर विजय (21 काव्य)	1320 ई0	युधिष्ठिर कथा
34. सकल्यमल्ल	उदार राघव	1330 ई0	रामकथा, 18

35. माधव	नरकासुर विजय	1380 ई0	कृष्णकथा, 9
36. वामनभट्ट	रघुनाथ चरित, नलाभ्युदय	1400 ई0	रामकथा, 30 नलकथा, 8
37. व्यासतीर्थ	जयतीर्थ विजय	1400 ई0	जयतीर्थ
38. कृष्ण	जयतीर्थ विजयाब्धि	1400 ई0	जयतीर्थ
39. संकर्षण	जयतीर्थ विजय	1400ई0	जयतीर्थ
40. श्रीनिवास	जयीन्द्रोदय	1400ई0	जयतीर्थ
41. सुकुमार	कृष्णविलास	1425 ई0	कृष्णकथा,
42. राजनाथ	द्वितीय सालुवाभ्युदय	1430ई0	साल्व नरसिंह, 13
43. शंकर	कृष्ण विजय	1430 ई0	कृष्णकथा
44. कृष्णाचार्य	भरत चरित	1430 ई0	दौष्यन्ति भरत, 12
45. रामवर्मा	भारत संग्रह	1430 ई0	महाभारत, 22
46. शिवसूर्य	पाण्डवाभ्युदय	1450 ई0	महाभारत, 8
47. सलुव नरसिंह	रामाभ्युदय	1460 ई0	रामकथा, 24
48. (अज्ञात)	कुशाभ्युदय	1460 ई0	कुश कथा
49. चतुर्भुज	हरिचरित काव्य	1493 ई0	कृष्णचरित, 13
50 राजनाथ	तृतीय अच्युतरायाभ्युदय	1540 ई0	अच्युतराय, 20
51. स्वयंभूनाथ	कृष्णविलास	1540 ई0	कृष्णकथा, 14
52. गोविन्द दीक्षित	साहित्यसुधा	1560 ई0	अच्युत, रघुनाथ
53. उत्प्रेक्षावल्लभ	भिक्षाटन--काव्य	1590 ई0	शिवकथा, 39अ0
54. रूद्र कवि	राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य	1596 ई0	राष्ट्रीय वंश, 20
55. रघुनाथ	नलाभ्युदय, पारिजातहरण	1600 ई0	नल कथा
56. यज्ञानारायण	रघुनाथभूप विजय	1600 ई0	रघुनाथ राजा, 16
57. वेंकटेश्वर	साहित्य साम्राज्य	1600 ई0	
58. राजचूडामणि दीक्षित	रूक्मिणी कल्याण शंकराभ्युदय	1620 ई0	कृष्ण रूक्मिणी, 10 शंकराचार्य, 6
59. मृत्युंजय दीक्षित	प्रद्युम्नोत्तरचरित	1620 ई0	प्रद्युम्न कथा, 11

60. चक्र कवि	जानकी परिणय	1650 ई0	राम सीता विवाह, 8
61. नीलकण्ठ	शिवलीलार्णव	1650 ई0	शिवकथा, 22 गंगावतरण गंगा, 8
62. वेंकटेश रामयककार्णव,	रामचन्द्रोदय, रामकथा	1650 ई0	रामकथा, 30,
63. वेंकटकृष्ण	यज्वा नाटेश विजय	1650 ई0	शिवकथा 7
64. श्रीनिवास	भूवराहविजय	1660 ई0	बराहावतार, 8
65. वरददेशिक	लक्ष्मीनारायण चरित रघुवर विजय	1680 ई0	विष्णुकथा, रामकथा
66. भगवन्त	मुकुन्द विलास	1690 ई0	कृष्णकथा, 10
67. रामभद्र दीक्षित	पंतजलि चरित्र	1700ई0	पतंजलि, 8
68. घनश्याम	भगवत्पादचरित,	1725 ई0–	वेंकटेशचरित
69. रामपाणिवाद	विष्णु विलास राघवीय काव्य	1725 ई0	विष्णुकथा, 8 रामायण, 20
70. रामवर्मा (युवराज)	रामचरित	1800 ई0	रामकथा, 12
71. केरल वर्मा	विशाखराज	1860 ई0	–
72. परमेश्वरशिव	श्रीरामवर्ममहाराजचरित्र	1870 ई0	श्रीरामवर्मवंचि, 8
73. अभिनव	श्रीनिवास गुणाकर	1875 ई0	वेंकटेश रामानुजाचार्य
74. लक्ष्मण सूरि	कृष्णलीलामृत	1880 ई0	कृष्णकथा
75. विधुशेखर	उमा परिणय	1880 ई0	भट्टाचार्य हरिश्चन्द्रचरित सं0सा0स0इ0–17
76. चण्डामारूताचार्य	अलीनराजकथा	1900 ई0	6 सर्ग
77. नारायणशास्त्री	सौन्दर विजय	1900ई0	24 सर्ग
78. भद्राद्रिराम शास्त्री	श्रीरामविजय	1900 ई0	
79. कालिदास	नलोदय काव्य	1900 ई0	नल कथा
80. शंकरलाल	रावजीराजकीर्ति	1900 ई0	विलास, बालचरित
81. शिवकुमार शास्त्री	यतीन्द्र जीवन चरित	1910 ई0	भास्करानन्द
82. हेमचन्द्रराय	हैहय विजय पाण्डव	1920 ई0	विजय आदि, 4
83. अन्नदाचरण	रामाभ्युदय	1930 ई0	महाप्रस्थान

84. वटुकनाथ शर्मा	सीता स्वयंवर	1930 ई0	
85. गुरूप्रसन्न भट्टाचार्य	श्रीरास–महाकाव्य	1930 ई0	
86. नागराज	सीता स्वयंवर भारतीय	1940 ई0	रामकथा देशभक्तचरित, 4
87. भगवदाचार्य	भारत पारिजात	1940 ई0	गांधी चरित, 25
	परिजातापहार	1945 ई0	भारत छोड़ो, 29
	परिजात–सौरभ	1950 ई0	स्वाधीन भारत, 21
88. विष्णुदत्त शुक्ल सौलोचनीय,	गंगा काव्य	1958 ई0	सुलोचना वियोगी
89. मेघाव्रत कविरत्न	दयानन्द, दिग्विजय	1950 ई0	स्वामी दयानन्द
90. रामावतार शर्मा	भारतानुवर्णन	20वीं श0पू0	भारतवर्ष
91. दिलीपदत्त शर्मा	मुनिचरितामृतम्	20वीं श0पू0	स्वा0 दयानन्द, उपाध्याय 22 बिन्दु
92. अखिलानन्द शर्मा	दयानन्द दिग्विजय	20वीं श0पू0	स्व0 दयानन्द, 22
93. गंगाधर शास्त्री	तैलंग अलिविलासि संलाप	20वीं श0पू0	षड्दर्शन
94. भट्ट मथुरानाथ शास्त्री	जयपुर वैभव	20वीं श0पू0	जयपुर कृष्ण गोविन्द वैभव
95. रघुनाथशास्त्री	चन्द्रोपालम्भवर्णन	20वीं श0पू0	सुरहा, वर्णन महाकाव्यम्
96. हनुमत् प्रसाद शास्त्री	अभिनवमुद्भिज्ज	20वीं श0पू0	विज्ञानम् सिद्ध भैषज्य–मंजूषा
97. मथुरा प्रसाद शास्त्री		प्रतापविजयम	20वीं श0पू0 भारतविजयम्, 8
98. बदरीनाथ शर्मा	मैथिल	राधा परिणयम्	20वीं श0पू0 कृष्ण कथा, 20
99. गंगा प्रसाद उपाध्याय	आर्योदय	20वीं श0पू0	आर्यसमाज, 21
100. उमापति शर्मा द्विवेदी	पारिजातहरण	20वीं श0पू0	कृष्णकथा, 22
101. रामसनेहीदास	जानकीचरितामृत	1950 ई0	रामकथा, 108अ0
102. द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री	स्वराज्य विजय	1960 ई0	स्वतंत्रता, 18
103. डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री गुरू गोविन्द सिंह	बोधिसत्त्व चरित महाकाव्यम्	20वीं श0उ0	बुद्धचरित,
104. डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी	सीताचरितम्	1968 ई0	सीताकथा, 10

गद्य काव्य का उद्भव एवं विकास

गद्य काव्य की उत्पत्ति :

गद्य काव्यों की उत्पत्ति के विषय में जो विभिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं–

1. गद्य काव्यों की उत्पत्ति पद्य काव्यों से लोककथाओं के माध्यम से हुई।
2. ग्रीक पद्य रचनाओं से भारतीय गद्य काव्यों की उत्पत्ति हुई।
3. गद्य काव्यों की उत्पत्ति पद्य काव्यों के समानान्तर स्वाभाविक क्रमिक विकास से हुई। प्रथम मत का अभिप्राय है कि संस्कृत के गद्यकाव्य मूलतः पद्य काव्यों से उत्पन्न हुए हैं। पद्य काव्यों के प्रभाव के कारण ही उनमें आलंकारिकता, मनोभावों की अभिव्यक्ति, शारीरिक, नैतिक एवं प्राकृतिक वर्णनों की प्रचुरता का सामंजस्य प्राप्त होता है। पद्य काव्यों के तुल्य गद्य काव्यों में भी कृत्रिमता, पाण्डित्य प्रदर्शन और रसाभिव्यक्ति पर बल है। जहां तक कथानक का सम्बन्ध है, वह वृहत्कथा आदि लोककथा ग्रन्थों से लिया गया है। दूसरा मत पीटर्सन आदि से प्रस्तुत किया है कि भारतीय गद्यकाव्य प्रत्यक्षतः यूनानी गद्यकाव्य के अनुकरण पर विकसित हुआ था।[1] कुछ भारतीय विद्वान भी यूनानी गद्य के अनुकरण पर संस्कृत गद्यकाव्य के रचना सम्बन्धी पाश्चात्त्य विचारकों के मत से सर्वथा सहमत प्रतीत होते हैं।[2] प्रो0 सिल्वॉ लेवी तो यूनानी गद्य की तुलना के योग्य ही संस्कृत गद्य को नहीं मानते, क्योंकि उनके मत से ये दोनों गद्य काव्य रचना और भाव की दृष्टि से सर्वथा भिन्न हैं। संस्कृत गद्य काव्य में कथा या साहसिकता बहुत कम उपलब्ध होती है। उसमें मुख्य ध्यान काव्य शास्त्रीय आलंकारिकता, सूक्ष्म प्रकृति वर्णन तथा नैतिक, मानसिक, और शारीरिक गुणों के चित्रण पर दिया जाता है। इसके विपरीत ग्रीक और लैटिन पद्य काव्यों में कथा ही सब कुछ होती है। पाठक एक से दूसरे साहसिकता सम्बन्धी घटना चक्र में क्रमशः डूबता चला जाता है और वे घटना क्रम क्रमशः अधिक रोचक तथा महत्वपूर्ण

होते चले जाते हैं। इस गद्य में शैली सौन्दर्य तथा प्राकृतिक दृश्यों आदि की यथासंभव उपेक्षा ही दिखाई पड़ती है।[2] प्रायः सभी विद्वानों ने संस्कृत गद्यकाव्यों पर यूनानी गद्य रचनाओं के प्रभाव का खण्डन किया है। प्रो० लाकोटे ने तो यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यूनानी गद्यकाव्यों पर भारतीय गद्यकाव्यों का प्रभाव पड़ा है और यूनानी गद्य काव्य ही भारतीय गद्यकाव्यों का ऋणी है।[2] भाषा, शैली, कथा वस्तु, कथानक संघटन, अलंकार योजना तथा रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से यूनानी और भारतीय गद्यकाव्य पूर्णतया एक दूसरे से पृथक हैं, अतः भारतीय गद्यकाव्यों पर यूनानी प्रभाव की चर्चा सर्वथा असंगत है।

प्रथम मत के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि संस्कृत गद्यकाव्यों की कोई धारा नहीं थी और परकाल मे गद्यकाव्य की एक नवीन शाखा के रूप में गद्यकाव्य का विकास हुआ। परन्तु तात्विक विवेचन से यह मत भी असंगत एवं निराधार प्रतीत होता है वास्तविकता यह है कि वैदिक काल से ही जिस प्रकार वैदिक संस्कृत के साथ प्राकृत भाषा समानान्तर अविच्छिन्न रूप से विकसित होती रही और आज भी अपने विभिन्न स्वतंत्र रूपों में विद्यमान है, उसी प्रकार पद्य शैली के साथ ही गद्य शैली समानान्तर चलती रहीं। पद्य शैली में जब और जिस रूप में विकास और परिवर्तन हुए तदनुरूप ही गद्य शैली में भी समानान्तर विकास और परिवर्तन परिलक्षित हुए। विभिन्न संस्कृतियों और भावों का यथासम्भव दोनों ही धाराओं पर समान रूप से प्रभाव पड़ा। लेखन सामग्री के अभाव के कारण स्मरण शक्ति को बोझिल न बनाने के लिये एक ओर धार्मिक कृत्यों के लिये पद्य शैली अपनाई गई और दूसरी ओर शास्त्रीय, दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयों के लिये गद्य शैली अपनाई गयी। गद्य शैली में भी सूत्र शैली को प्रमुखता दी गयी। लेखन सामग्री की सुविधा के साथ ही दोन्मे शैलियों में कलात्मक विस्तार और विवरण प्रधानता आई। एक ओर वाल्मीकि के समय से पद्य शैली ने लौकिक काव्यात्मकता और अलंकार प्रियता का रूप लिया तो दूसरी ओर गद्य शैली ने अपनी नीरसता एवं अमनोज्ञता को छोड़कर कथा और

आख्यायिकाओं को अपनाकर सरसता, अलंकार प्रियता और मनोज्ञता का आधान किया।

1. पीटर्सन, कादम्बरी की भूमिका, द्वितीय संस्करण 1889, पृष्ठ 101–104।
2. हेलेनिज्म इन एंशिएण्ट इंडिया–जी0 बनर्जी।
3. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–कृष्णमाचारी, पृष्ठ 440।
4. इसके विस्तृत विवेचन के लिये देखो–एल0एच0 ग्रे–कृत वासवदत्ता की भूमिका, पृष्ठ 35।

गद्य काव्य का विकास

वैदिक गद्य :

गद्य का प्रारम्भिक रूप हमें वैदिक संहिताओं में मिलता है। गद्य और गद्य के लिये प्राचीन पारिभाषिक शब्द क्रमशः ऋच् (ऋक्) और यजुष् (यजुः) थे। ऋक् की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि जिस रचना पद्यति में अर्थ के अनुसार पाद की व्यवस्था होती है, उसे ऋक् कहते हैं।[1] अर्थात् पद्यात्मक बन्ध ऋक् हैं। अतः अतः पद्यात्मक मंत्रों का संग्रह (संहिता) ऋग्वेद संहिता है। जब ऋग्वेद की ऋचाएं संगीत पद्धति पर गेय होती हैं, तब वे साम कही जाती है।[2] इन दोनों के विपरीत छन्द विधान से रहित वैदिक मंत्रों को यजुष् कहा जाता है।[3] अनियताक्षरावसानो यजुः और गद्यात्मको यजुः परिभाषाओं के अनुसार यजुष में अक्षरों का अवसान सम्बन्धी कोई नियम नहीं होता है। दूसरे शब्दों में एक वाक्य या चरण में आने वाले शब्दों की सीमा सम्बन्धी बन्धन से मुक्त रचना पद्धति को यजुष कहा जाता है। इसी का दूसरा नाम गद्य है। इज्यतेऽनेति यजुः व्युत्पत्ति के अनुसार यजुष् नामक वैदिक गद्य का उपयोग वेद मंत्रों की विनियोगादि परक व्याख्याओं में प्राप्त होता है।

1. तेषामृग यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था (पूर्वमीमांसा 2–1–35)।
2. गीतिषु सामाख्या (पू0 मी0 2–1–36)।
3. शेषे यजुः शब्दः (पू0मी0 2–1–37)।

वैदिक गद्य का प्राचीनतम् रूप हमें शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, काठक और मैत्रायणी संहिताओं में मिलता है। अथर्ववेद में भी गद्यांश प्रचुर मात्रा में मिलता है। तत्पश्चात् समस्त ब्राह्मण ग्रन्थ प्रायः गद्यात्मक हैं। इनमें गद्यात्मक अंश के लिये विशेष उल्लेखनीय शतपथ, ऐतरेय, तैत्तिरीय और गोपथ ब्राह्मण है। इनमें वैदिक मंत्रों की विशद् मंत्रों की विशद् व्याख्या, यज्ञादिपरक विनियोग, प्राचीन आख्यान और कर्मकाण्डपरक विधि वर्णित है। ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् आरण्यकों और उपनिषदों में भी वैदिक गद्य प्राप्त होताहै। वैदिक गद्य की मुख्य विशेषता यह है कि इनमें सरलता, स्वाभाविकता, प्रवाहशीलता, रोचकता एवं संवादात्मकता है। इसमें सरल भावों को साधारण बोलचाल की भाषा में व्यक्त किया गया है। सूत्र गद्य के अतिरिक्त अन्य वैदिक गद्य में अथ, वै, ह, नु, वाव, खलु, इति आदि निपातों का प्रयोग वाक्यालंकार के लिये किया गया है। वैदिक गद्य लौकिक व्याकरण के नियमों से मुक्त है, अतः आर्ष प्रयोग पर्याप्त मिलते हैं। ऐसे प्रयोग क्रमशः न्यून होते गये हैं।

वैदिक साहित्य से सम्बद्ध प्रातिशाख्य ग्रन्थ, चारों प्रकार के कल्प ग्रन्थ–श्रोतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्वसूत्र तथा निरुक्त गद्यात्मक सूत्र पद्धति में लिखे गये हैं।

पौराणिक गद्य :

पुराणों का अधिकांश भाग पद्यमय है। परन्तु महाभारत, विष्णुपुराण और भागवत पुराण आदि में यत्र तत्र गद्य भी उपलब्ध होता है। इस पौराणिक गद्य को वैदिक और लौकिक गद्य के बीच की कड़ी कहा जा सकता है। वैदिक गद्य के समान इसमें भी लघु बन्धों का प्रयोग किया गया है। आर्ष प्रयोग मिलते हैं और भाषा का स्वाभाविक प्रवाह भी मिलता है। दूसरी ओर इसमें लौकिक संस्कृत के ललित गद्य के समान प्रासांदिकता, अलंकारिता और प्रौढ़ता भी पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं।

शास्त्रीय गद्य :

वैदिक सूत्र ग्रन्थों की परम्परा में ही शास्त्रीय गद्य का विकास हुआ। यह गद्य गंभीर मनन, चिन्तन और विश्लेषण से

संबद्ध था। भारतीय षड्दर्शन न्याय वैशेषिक, सांख्य योग तथा मीमांसा वेदान्त इसी पद्धति पर विकसित हुआ। समस्त संस्कृत व्याकरण भी इसी सूत्र शैली में विकसित हुआ। जिसका चरम उत्कर्ष पाणिनी की अष्टाध्यायी में देखने को मिलता है। जिसमें अर्ध मात्रा लाघव को भी पुत्र जन्मोत्सव के बराबर माना गया है।[2]

इन सूत्र ग्रन्थों की दुर्बोधता को दूर करने के लिये विविध भाष्य ग्रन्थों की रचना हुई। इन भाष्य ग्रन्थों के यास्क प्रणीत निरुक्त, जयन्त भट्ट कृत न्यायमंजरी, शबर स्वामी कृत मीमांसाभाष्य, शंकराचार्य कृत शारीरिक भाष्य बहुत लोकप्रिय हुए। इन भाष्य ग्रन्थों की सरलता और सरसता ही इनकी लोकप्रियता का कारण रहा।

भाषा की सरलता और प्रसाद गुंण के कारण पतंजलि कृत व्याकरण महाभाष्य अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। पतंजलि की भाषा परकालीन भाष्यकारों के लिये आदर्श हो गई। व्याकरण जैसे नीरस विषय को सरस बना देना पतंजलि का ही चमत्कार था।

वैद्यक ग्रन्थों के कुछ अंश, अलंकार शास्त्र और कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी शास्त्रीय गद्य के उदाहरण हैं।

1. स्वल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम्।
   अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः।।
2. अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः।

साहित्यिक गद्य :

आख्यान–आख्यायिका :

वैदिक काल से गद्य साहित्य की जो परम्परा अविच्छिन्न रूप से चल रही थी, वह कात्यायन (350 ई0पू0) के समय तक पर्याप्त समृद्ध हो चुकी थी। कात्यायन से पूर्व साहित्य को दो भागों में विभक्त किया गया था– क. आख्यान–काल्पनिक कथा, ख. आध्यायिका--व्यक्ति मूलक या ऐतिहासिक कथा। कात्यायन ने इन दोनों भेदों का उल्लेख किया है।[1] कात्यायन का ही दूसरा नाम वररूचि माना जाता है। भोज (1005–1054 ई0) ने अपने श्रृंगार

प्रकाश में वररूचि के एक आख्यायिका ग्रन्थ 'चारूमती' से एक पद्य उद्धृत किया है। इसके विषय में अन्य विवरण अप्राप्य हैं।

वासवदत्ता आदि :

पाणिनि के सूत्र 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' (4–3–87) पर कात्यायन ने 'लुबाख्यायिकाभ्यों बहुलम्' वार्तिक लिखा है। जिससे स्पष्ट है कि कात्यायन को अपने से पूर्ववर्ती अनेक आख्यायिका ग्रन्थों का परिचय था। पतंजलि ने आख्यायिका शब्द की व्याख्या करते हुए तीन आख्यायिका ग्रन्थों के नाम दिये हैं– 1. वासवदत्ता 2. सुमनोत्तरा, 3. भैमरथी है।[2] ये आख्यायिका ग्रन्थ कात्यायन से भी पूर्ववर्ती हैं या केवल पतंजलि से ही, यह निर्णय करना संभव नहीं है। इतना स्पष्ट है कि कात्यायन और पतंजति से पहले आख्यायिका ग्रन्थ अपने प्रौढ़ रूप में आ चुके थे और सुप्रसिद्ध हो चुके थे।

शूद्रक कथा :

कल्हण (1150 ई0) कृत 'सूक्ति मुक्तिवली' में शूद्रक कथा के लेखक के रूप में रामिल और सौमिल का उल्लेख है। यह दो लेखकों की संयुक्त कृति है। अतः इसे अर्धनारीश्वरोपम बताया गया है।[3] यह सौमिल संभवतः वही महाकवि हैं, जिसका उल्लेख कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना में सौमिल्ल नाम से बहुत आदरपूर्वक किया है।[4]

1. वार्तिक-- 'आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च'। (अष्टा0 4–2–60)
2. आख्यायिकाभ्यो बहुलं लुग् वक्तव्यः। वासवदत्ता, सुमनोत्तरा। न च भवति, भैमरथी। महाभाष्य 4–3–87।
3. तौ शूद्रककथाकारौ वन्द्यौ रामिल सौमिल्लौ।
   काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोमम्।।
4. प्रथितयशसां भास सौमिल्ल कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य..... (मालविका0)।

बृहत्कथा :

बाण ने हर्षचरित की भूमिका में महाकवि गुणाढय (78ई0) कृत बृहत्कथा का उल्लेख किया है और इसे आश्चर्यजनक रचना

बताया है।[1] परवर्ती कथा साहित्य के लिये यह आकर ग्रन्थ रहा है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि पूरा ग्रन्थ पद्य बद्ध ही था या गद्य बद्ध।

तरंगवती आदि :

आन्ध्रभृत्य राजाओं (29 ई0पू0 से 195 ई0) के निरीक्षण में कुछ गद्य रचनाएं हुई। इनमें श्रीपालित कृत 'तरंगवती' और अज्ञात लेखकों द्वारा रचित 'मनोवती' और 'शातकर्णोहरण' आख्यायिका ग्रन्थों के नाम प्राप्त होते हैं। धनपाल की 'तिलक मंजरी' तथा अभिनन्द के 'रामचरित' में श्रीपालित कृत 'तरंगवती' की प्रशंसा की गई है।[2] भोज के श्रृंगार प्रकाश में 'मनोवती' और 'शातकर्णीहरण' की प्रशंसा मिलती है। दण्डी ने भी मनोवर्ती का संकेत किय है।[3] जल्हण कृत 'सुक्ति मुक्तावली' में कुल शेखर वर्मा रचित 'आश्चर्यमंजरी' नामक आख्ययिका तथा शीला भट्टारिका द्वारा पांचाली रीति में लिखित गद्य कृति का उल्लेख मिलता है।[4] बाण में हर्षचरित की भूमिका में भट्टार हरिश्चन्द्र के गद्य को सर्वश्रेष्ठ माना है।[5] कुछ विद्वान इस गद्य बन्ध का नाम 'मालती' मानते हैं। राजा भोज कृत एक अन्य 'शूद्रक कथा' का भी उल्लेख मिलता है। इसका दूसरा नाम 'पंचाशिका' भी है।

5. हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा। हर्ष0 भूमिका श्लोक 17।
6. पुण्या पुनाति गङ्गेव गां तरङ्वती कथा। तिलकमंजरी।
7. धवलप्रभवा रागं सा वितनोति मनोवती। अवन्तिसुन्दरीकथा।
8. दूरादपि सतां मध्ये लिखित्वाऽऽश्चर्यमंजरीम्।
   कुलशेखरवर्माख्यश्चकाराश्चर्यमंरीम्।।
   शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचाली रीतिरिष्यते।
   शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।
9. भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धों नृपायते। हर्ष0 भू0 श्लोक 12

गिरिनार का शिलालेख और समुद्रगुप्त प्रशस्ति :

महाक्षत्रप रूद्रदामन् (150ई0) के गिरिनार के शिलालेख के गद्य में लम्बे समासों और अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है।[1] इसमें रूद्रदामन् को स्फुट लघु मधुर चित्र

कान्त शब्दसमयोदारालंकृत गद्य पद्य के लेखन में निपुण बताया गया है। प्रयाग स्तम्भ पर लिखित हरिषेण (345ई0 के लगभग) कृत समुद्रगुप्त प्रशस्ति लगभग 35 पंक्तियों में एक ही समस्त वाक्य में लिखी गयी है। यह प्रशस्ति बाण की समास बहुल शैली का पूर्व रूप मानी जा सकती है।

प्रमुख गद्यकाव्य : परिचय एवं काव्य वैशिष्ट्य :

संस्कृत गद्य काव्य का निखरा हुआ रूप हमें दण्डी के दशकुमारचरित से मिलना प्रारम्भ होता है। सुबन्धु कृत वासवदत्ता अलंकृत एवं श्लेष प्रधान शैली का परिचायक है। बाण कृत हर्षचरित और कादम्बरी गद्य शैली के सर्वोत्कृष्ट रूप है।

परवर्ती गद्य :

परवर्ती गद्य काव्यों में प्रमुख ये है– धनपाल (1000ई0) कृत तिलकमंजरी, वादीभसिंह, (1000ई0) कृत गद्यचिन्तामणि, वामन भट्ट बाण (1500ई0) कृत वेमभूपालचरित, अम्बिकादत्त व्यास कृत शिवराज विजय, विश्लेश्वर पांडेय कृत मंदारमंजरी, हृषीकेश भट्टाचार्य कृत निबन्धों का संग्रह 'प्रबन्धमंजरी, पण्डिता क्षमाराव कृत कथामुक्तावली आदि तथा डॉ0 रामशरण त्रिपाठी कृत कौमुदीकथाकल्लोलिनी आदि।

1. दशकुमारचरित की संक्षिप्त कथा :

गद्यकाव्य पुरोधा कविवेरण्य दण्डी प्रणीत दशकुमारचरित की कथावस्तु इस प्रकार मगधदेश की राजधानी पुष्पपुरी (वर्तमान पटना) पर राजहंस का शासन था। उसके 3 मंत्री थे–धर्मपाल, पद्मोद्भव और सितवर्मा। इनमें से 1. धर्मपाल के सुमन्त्र, सुमित्र और कामपाल, 2. पद्मोद्भाव के सुश्रुत और रत्नोद्भव, 3. सितवर्मा के सुमति और सत्यवर्मा पुत्र थे। इनमें से कामपाल यायावर (अवारा) था, अतः घर छोड़कर चला गया। रत्नोद्भव समुद्री व्यापार में लग गया और सत्यवर्मा संसार की असारता से खिन्न होकर तीर्थयात्रा पर निकला। शेष 4 मन्त्रिपुत्र (सुमन्त्र, सुमित्र, सुश्रुत और सुमति) बड़े होकर राजहंस के मंत्री बने। राजहंस सर्वथा सुखी होने पर भी सन्तानहीनता के कारण बहुत चिन्तित थे।

मालव नरेश मानसार ने एक बार मगध पर आक्रमण किया। वह परास्त होकर बन्दी बनया गया। राजहंस ने दया करके उसे मुक्त कर दिया और उसका राज्य उसे लौटा दिया। पराजित मानसार ने शिव की आराधना से एक मारक गदा प्राप्त की और पुनः राजहंस पर चढ़ाई की। इस बार मानसार की जीत हुई। घायल राजहंस वन में पहुंचे। मंत्रियों सहित रानियाँ वन में सुरक्षित पहुंच गयी थी। वे पति को लापता समझकर सती होने की तैयारी करती हुई विलाप कर रही थी तभी राजहंस ने वहाँ पहुँचकर उन्हे बचा लिया।

स्वस्थ होकर राजहंस ने वामदेव नामक एक तपस्वी की सेवा की और उन्हें अपनी दुःखगाथा सुनाई। ध्यान लगाकर वामदेव ने बताया कि राजहंस के एक पुत्र होगा। वह अपने साथियों के साथ विजय अभियान करके खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त करेगा और शत्रुओं का नाश करेगा। वामदेव की भविष्यवाणी सत्य हुई। राजा के पुत्र हुआ। उसका नाम राजवाहन रखा गया। लगभग इसी समय 4 मंत्रियों के 4 पुत्र हुए। उनके नाम मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त, विश्रुत और प्रमति रखे गये। राजहंस राजवाहन सहित इन चार मंत्रि पुत्रों का भी पालन करने लगे। तभी उनके यायावर, मन्त्रिपुत्र कामपाल का पुत्र अर्थपाल समुद्री व्यापार पर गये। रत्नोद्भव का पुत्र पुष्पोद्भव और तीर्थयात्रा पर गये सत्यवर्मा का पुत्र सोमदत्त अपने पिताओं के विभिन्न दुर्घटनाओं में ग्रस्त हो जाने के कारण राजहंस के पास लाये गये।

इसी समय राजहंस को ज्ञात हुआ कि मानसार के साथ युद्ध में उनके हारने से खिन्न उनका मित्र मिथिला नरेश प्रहारवर्मा हताश होकर अपने परिवार के साथ राज्य की ओर लौट रहा था। मार्ग में शबरसेना के आक्रमण कर उसे मार दिया। रानियाँ विमुक्त हो गयी। उस विपन्न अवस्था में रानियां दो पुत्रों को जन्म देकर दिवंगत हो गई। वे दोनों बालक उपहारवर्मा और अपहार वर्मा भी राजहंस के पास लाये गये। इस प्रकार राजहंस ने 10 कुमारों– 1. अपना पुत्र 2. मन्त्रिपुत्र, 2. प्रहारवर्मा के पुत्र का पालन किया।

ये दसो कुमार बड़े होकर दिग्विजय के लिये निकले और अपने अभियान के समय सभी एक दूसरे से अलग हो गये। अन्त

में ये सभी कुमार एक–कुमार करके राजवाहन को मिलते गये और अपनी साहसिक विजय गाथा सुनाते रहे। इन्हीं दस कुमारों की साहसिक विजयगाथाओं का संग्रह दशकुमारचरितम् है।

पूर्वपीठिका में 5 उच्छ्वास है। इनमें क्रमशः इन बातों का वर्णन है–

(उच्छवास 1) राजवाहन का जन्म (कुमारोत्पतिः); 2. मन्त्रिपुत्रों का जन्म (द्विजोपकृतिः); 3. सोमदत्त के साहसिक कार्य (सोमदत्तचरितम्); 4. पुष्पोद्भव की साहसिक कथा (पुष्पोद्भवचरितम्); 5. राजवाहन का अवन्तिसुन्दरी से विवाह (अवन्तिसुन्दरीपरिणयः)।

मुख्य दशकुमारचरित में 8 उच्छ्वास हैं। इनमें क्रमशः इन कुमारों का चरित वर्णित है– 1. राजवाहन चरित, 2. अपहारवर्मा का चरित, 3. उपहार वर्मा का चरित, 4. अर्थपाल चरित, 5. प्रमति चरित, 6. मित्रगुप्त चरितं, 7. मन्त्रगुप्त चरित, 8. विश्रुत चरित। उत्तरपीठिका ग्रन्थ का उपसंहार है। इसमें वर्णन किया गया है कि सभी कुमार राजहंस और वसुमती से मिलते है। राजहंस दसों कुमारों को अपने जीते हुए राज्य सौंपकर वानप्रस्थ स्वीकार करते हैं और दसों कुमारों ने नीतिपूर्वक अपने राज्य का शासन किया।

दण्डी की शैली और काव्य सौष्ठव :

आचार्य दण्डी परिष्कृत गद्य शैली के जन्मदाता है। गद्य का क्या स्वरूप होना चाहिये और उसमें भाव भाषा रस अलंकारों का किस प्रकार समन्वय प्रस्तुत करना चाहिये, इसका आदर्श उन्होंने दशकुमारचरित में प्रस्तुत किया है। वे वैदर्भी शैली के कवि हैं। उनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुणों की चरमसीमा है। उनमें भावों की अभिव्यंजना की शक्ति इतनी प्रबल है कि कठिन से कठिन राजनीति आदि के तत्त्वों को सरलतम भाषा में प्रस्तुत कर सकते हैं। भावानुकूल पदावली का संचयन उनकी प्रमुख विशेषता है। श्रृंगार, करुण आदि के वर्णन में उनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य की मंजुल छटा दर्शनीय है तो नखशिख वर्णन, प्रकृति वर्णन आदि में समासयुक्त और सालंकार पदावली भी उतनी ही प्रौढ़

तथा परिष्कृत है। उन्हें सदा ध्यान रहता है कि वे कथा लिख रहे हैं न कि काव्य। अतएव उनकी सबसे प्रमुख विशेषता है कि वे कथा के प्रवाह में कभी भी अवरोध उपस्थित नहीं होने देते। प्रकृति आदि के वर्णन का मोह एवं मायाजाल निर्लिप्त दण्डी स्वामी के तुल्य उन्हें अपने वशीभूत नहीं कर पाता। उनकी शैली सरल होने पर भी प्रांजल है, कोमल होने पर भी प्रौढ़ है, अकृत्रिम होने पर भी सालंकार है, वाच्यर्थप्रधान होने पर भी व्यंग्यार्थक है। दण्डी श्रृंगार का वर्णन करते हुए भी निर्लिप्त है, अर्थ और काम की प्रमुखता बताते हुए भी धर्म प्रधान है, कामशास्त्र की शिक्षा देते हुए भी नीतिशास्त्र के उपदेशक है। दण्डी की शैली में एक ओर श्रृंगार है तो दूसरी ओर हास्य, एक ओर करूण है तो दूसरी ओर भयानक, एक ओर ज्ञान है तो दूसरीी ओर नीति, एक ओर आदर्श है तो दूसरी ओर व्यवहार, एक ओर जीवन की वास्तविकता है तो दूसरी ओर नैतिकता। इस प्रकार दण्डी में विरोधी गुणों का अपूर्व समन्वय मिलता है। उनकी भाषा में परिष्कार, प्रांजलता और लोच गुण है। उनका पदलालित्य परमकालीन लेखकों के लिये आदर्श रहा है। अतएव दण्डिनः पद लालित्यम्' सुभाषित अत्यन्त प्रचलित है। 'मधुराविजय' महाकाव्यकार गंगादेवी ने दण्डी की कृति को सरस्वती का मणिदर्पण बताया है।

आचार्यदण्डिनो वाचामाचान्तामृतसम्पदाम्।
विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणिदर्पणम्।।

कुछ समालोचकों ने कवि के रूप में दण्डी से पूर्व केवल वाल्मीकि और व्यास को ही स्थान दिया है। वाल्मीकि के होने पर कवि प्रयोग हुआ, व्यास के होने पर कवी (द्विवचन) और दण्डी के होने पर कवयः (बहुवचन) प्रयोग आरम्भ हुआ।

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे, कवयस्त्वयि दण्डिनि।।

कुछ आलोचकों का मत है कि कवित्व का परिपाक केवल दण्डी में ही दृश्य है, अन्यत्र नहीं। अतः कहा गया है–

कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।

दण्डिनः पदलालित्यम् :

दण्डी का पदलालित्य गौरव का विषय है। उनकी भाषा में सुकुमारता, कोमलता, परिष्कार, प्रांजलता, प्रसाद और माधुर्य गुण है। दशकुमारचरित पढ़ने पर पाठक को यह अनुभूति होती है कि वह कुछ सरस रचना का रसास्वाद कर रहा है। जीवन की अनुभूतियां आंखों के सामने उतर आती हैं और वह कवि को अपना एक अन्तरंग मित्र का अनुभव करता है। दण्डी के गद्य में न तो सुबन्धु के तुल्य 'प्रत्यक्षरश्लेष' की योजना है और न बाण के तुल्य 'सरसस्वरवर्णपद' की कृत्रिमता है। उसमें दैनिक व्यवहार की प्रवाहशील भाषा है। छोटे–छोटे पद और वाक्य नवशिशुओं के तुल्य क्रीड़ा करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं और वे सहसा हृदय को आकृष्ट कर लेते हैं। कथाओं और उपन्यासों में प्रयुक्त मनोज शैली का इसमें अन्तर्भाव दीखता है। भाषा की सरसता, मधुरता और सहज सुन्दरता नीरस में भी सरसता का आधान कर देती है।

राजा राजहंस और उसकी पत्नी वसुमती के वर्णन में पदलालित्य और माधुर्य दर्शनीय है–

अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासंभारभासुरभूसुरनिकरः,.....

राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपों भूपो वभूव। तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव। – (पूर्व० उच्छवास 1)

2 सुबन्धुकृत वासदत्ता की संक्षिप्त कथा :

यद्यकाव्य के महाकवि सुबन्धु की रचना वासवदत्ता की कथावस्तु इस प्रकार है– इसमें राजा चिन्तामणि के पुत्र कन्दर्पकेतु नामक राजकुमार और राजा श्रृंगारशेखर की पुत्री राजकुमारी वासवदत्ता के प्रणय और परिणय का वर्णन है। संक्षिप्त कथा इस प्रकार है–वासवदत्ता एक अतिसुन्दरी राजकुमारी है। कन्दर्पकेतु ने स्वप्न में उसे देखा और वह उस पर आसक्त हो गया। वह वासदत्ता की खोज में अपने मित्र मकरन्द के साथ निकल पड़ा। वे विन्ध्य पर्वत पर पहुंचे। रात्रि में शुक्र सारिका के संवाद से उन्हें ज्ञात हुआ कि वासवत्ता ने भी स्वप्न में कन्दर्पकेतु को देखा है और उसे ढुंढने के लिये उसकी तमालिका नामक सारिका (मैना)

निकली है। पक्षी दम्पती की सहायता से वासवदत्ता और कन्दर्पकेतु का मिलन होता है। राजकुमार कन्दर्पकेतु को जब यह पता चलता है कि वासवदत्ता के पिता उसका विवाह विद्याधरों के राजा पुष्पकेतु से करना चाहते हैं तो वे दोनों एक जादू के घोड़े पर चढकर भाग जाते हैं और विन्ध्य पर्वत पर पहुंचते हैं। कुछ समय बाद वासवदत्ता कन्दर्पकेतु को सोता हुआ छोड़कर वन देखने जाती है। अचानक वह किरातों के मध्य में फँस जाती है। उसे पाने के लिये किरातों के दो दलों में संघर्ष होता है। वासवदत्ता चुपके से खिसक जाती है और एक ऋषि के आश्रम में अनुचित प्रवेश के कारण पाषाणशिला बन जाती है। विरहाकुल कन्दर्पकेतु आत्महत्या करना चाहता है, परन्तु आकाशवाणी उसे आत्महत्या से बचाती है और दोनों के पुनर्मिलन का आश्वासन देती है। वह इसी प्रकार कुछ समय बिताता हैं एक दिन सहसा उसका स्पर्श पाकर वह पाषाणशिला पुनः वासवदत्ता बन जाती है। उसी समय कन्दर्पकेतु का मित्र मकरन्द भी वहीं आ जाता है। तीनों कन्दर्पकेतु की राजधानी पहुंचते हैं और वहां से अपना शेष जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं।

सुबन्धु की शैली और उसका काव्यसौन्दर्य :

सुबन्धु संस्कृत गद्यकारों में अपना अनुपम स्थान रखते हैं वे अपनी रचना कुशलता, काव्यगौरव और प्रखर पाण्डित्य के लिये विख्यात हैं। उनकी रचना 'वासवदत्ता' प्रौढ़ पाण्डित्य की कसौटी है। अतएव वे संस्कृत गद्यकारों की 'वृहत्त्रयी' में गिने जाते हैं। अन्य दो महाकवि दण्डी और बाण हैं। वासवदत्ता एक काल्पनिक कथा है। अतः इसका संबन्ध ऐतिहासिक उदयन वासवदत्ता से सर्वथा नहीं है।

सुबन्धु गौड़ी रीति के कवि हैं। इनकी भाषा में ओज, समास बहुलता, कठिन पद विन्यास, पाण्डित्य प्रदर्शन और श्रम साध्यता पद–पद पर परिलक्षित होते हैं। सुबन्धु ने एक बहुत छोटे कथानक को लेकर गद्य काव्य लिखा है। अतः इसमें लम्बे प्रकृति वर्णन, स्त्री सौन्दर्य वर्णन, नगरी वर्णन और विस्तृत संवाद आदि प्राप्त होते हैं। इन लम्बे वर्णनों के कारण कवि का कला पक्ष अवश्य विकसित और विलसित हो सका है, परन्तु उसका भाव पक्ष बहुत

दब गया है। रसपरिपाक और कथा प्रवाह नहीं के बराबर है। श्लेष, विरोधाभास और परिसंख्या आदि अलंकारों का आवश्यकता से अधिक मोह कवि को रससिद्ध कवि की श्रेणी से च्युत कर देता है। कवि ने अपने प्रबन्ध के महत्त्व पर गर्व करते हुए कहा है कि इसमें पद–पद पर श्लेष का प्रयोग दर्शनीय है।

प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्ध–

विन्यासवैदग्धनिधिर्निबन्धम्।। (वासवदत्ता भूमिका श्लोक 13)

बाण के गद्य काव्यों की संक्षिप्त कथा

हर्षचरित की संक्षिप्त कथा :

यह महाकवि बाण की प्रथम रचना है। ऐतिहासिक वृत्त पर आश्रित होने से यह गद्यकाव्य का भेद 'आख्यायिका' है। इसमें 8 उच्छ्वास हैं। प्रथम दो उच्छ्वासो में हर्ष ने अपने वंश का वर्ण किया है और आगे के 6 उच्छवासों में हर्ष के पूर्वजों का वर्णन करते हुए हर्ष के जन्म से लेकर राज्यश्री के मिलने तक का वर्णन है। **(उच्छ्वास 9, 2)** प्रथम दो उच्छ्वासों का सारांश बाण के जीवनवृत में दिया गया है। वंशप्रवर्तक वत्स से लेकर बाण के जन्म तथा सम्राट् हर्ष से उसके परिचय और राज–सम्मान के वर्णन है। **(उच्छ्वास 3)** इसमें हर्षचरित की वास्तविक कथा आरम्भ होती है। हर्ष के पूर्वज राजा पुष्पभूति का वर्णन है। इसमें पुष्पभूति और शैव योगी भैरवाचार्या का सुन्दर चित्रण है। (उच्छ्वास 4) इसमें पुष्पभूति के वंशज राजाओं का केवल अस्पष्ट संकेत है। तदनन्तर महाराज प्रभाकरवर्धन के शौर्य का वर्णन है। उसकी पत्नी, रानी यशोव्रती थी। उनके दो पुत्र– राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा एक पुत्री, राज्यश्री, हुई। राज्यश्री का मौखरि–वंशज राजा ग्रहवर्मा से विवाह। (उच्छ्वास 5) इसमें हूणों के वधार्थ राज्यवर्धन का प्रस्थान, हर्ष का उसके साथ कुछ दूर जाना और मृगया खेलना, इसी समय पिता की रूग्णता की सूचना मिलना, हर्ष के लौटकर आना, माता यशोवती का पति की मुत्यु के पूर्व ही संती होने का संकल्प, हर्ष की प्रार्थना को अस्वीकार कर यशोवती का

सती हाने का संकल्प हर्ष का प्रार्थना को अस्वीकार कर यशोवती का सती होना, प्रभाकरवर्धन का सवर्गवास तथा हर्ष का विलाप वर्णित है। (उच्छ्वास 6) इसमें ह्ण–विजय कार राज्यवर्धन का लौटना, पितृ–शोक से विह्वला होना, राज्यवर्धन का मालव–नरेश द्वारा ग्रहवर्मा की हत्या राज्यश्री का बन्दी बनाना राज्यवर्धन का लालव–नरेश के वधार्थ भण्डि के साथ सेना–सहित प्रस्थान, राज्यवर्धन की हत्या तथा गोड–नरेश पर भ्रकमण का निर्णय वर्णित है। (उच्छ्वास 6) इसमें हर्ष की सेना का प्रस्थान, प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा द्वारा एक दिव्य छात्र हर्ष को भेंट किय जाना, भण्डि का आगमन औश्र राज्यवर्धन की हत्या का विवरण देना तथा राज्यश्री के सपरिवार विन्ध्य–वन में चले जाने की सूचना देना, राज्यश्री को ढूढने के लिए हर्ष का प्रस्थान तथा गौडा–नरेश पर आक्रमण के लिए मण्डि को आवेश देना वर्णित है। (उच्छ्वास 8) इसमें हर्ष का विन्ध्यवन में जाना ग्रहवर्मा के बाल–मित्र, बौद्व मुनि दिवाकरमित्र के आश्रम में पहुंचना, एक भिक्षुक द्वारा राज्यश्री के सपरिवार सती होने की तैयारी की सूचना पाना, हर्ष का दौडकर जाना और राज्यश्री को सती होने से बचाना, दिवाकरमिश्र का राज्यश्री की सात्वनाप्रद उपदेश और हर्ष का राज्यश्री के साथ लैटकर आना वर्णित है। यही पर कथा समाप्त होती है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में भूमिका के श्लोकों में अपने पूर्ववर्ती इन कवियों का बाण ने सादर उल्लेख किया है– महाभारतकार व्यास, वासवदत्ताकार (सुबन्धु), भट्टार हरिचन्द्र (गद्यकाव्य लेखक), सातवाहन, प्रवरसेन (सेतुबन्ध–कार), भास, कालिदास, बृहत्कथ–कार गुणाढय, भाढ्यराज।

समीक्षा– हर्षचरित महाकवि बाण की प्रथम एवं अपूर्ण कृति है। इसमें कादम्बरा के तुल्य रस–परिपाक, भावप्रवणता और धारावाहिकता नहीं है। पाण्डित्य–प्रदर्शन, कटिन शब्दावली, लम्बे समास और विस्तृत वर्णन इसके रसास्वादन मे विध्न उपस्थित करते है। तथापि बाण की वर्णन–शक्ति, विद्वता, शास्त्रीय पाण्डित्य, विविध विषयावगही ज्ञान का सुन्दर प्रदर्शन हर्षचरित में मिलता है। यद्यपि समास–बहुलता और क्लिष्टता कवि को बहुत रूचिकर है, तथापि करूणं रस के वर्णनो में भाषा में प्रसाद गुण की मात्रा

अधिक है। कवि की बहुज्ञता, सूक्ष्म-दृष्टि, राजकुलाभिज्ञता, भावुकता और मनोज्ञता का एक सुन्दर उदाहरण देखें। माता यशोवती का हर्ष से कथन है कि–

वत्स, नासि न प्रियो निर्गुणों वा परित्यागाहों वा। स्तन्येनैव सह स्वया पीतं में हृवयम्। कुलकलत्रमस्मि चारित्रधना धर्मधवलें कुले जाता। धीरजा वीरजाया वीरजननी च मादृशी पराकमकीता कथमन्याथा कुर्यात्।

– (उच्छ्वास 5, पृष्ठ– 167)

कादम्बरी की संक्षिप्त कथा :

कादम्बरी बाण की प्रौढ़ और अन्तिम कृति है। इसमें एक काल्पनिक कथा वर्णित है। यह गद्यकारू का 'कथा' भेद है। इसमें चन्द्रापीड और वैशम्पायन के तीन जन्मों का वर्णन है। कथा के अन्त में प्रेमी अपनी प्रेमिकाओं से मिल जाते है। तीनों जन्मों का विवरण जानने के लिए यह सारणी उपयुक्त है।

	चन्द्रापीड	वैशम्यापयन
प्रथम जन्म में	चन्द्रमा	पुण्डरीक
द्वितीय जन्म में चन्द्रमा	चन्द्रापीड	वैशम्पायन
तृतीय जन्म में चन्द्रमा	शूद्रक	शुक

पुण्डरीक के शाप के कारण चन्द्रमा ही चन्द्रापीड के रूप में जन्म लेता है। वही दूसरे जन्म में राजा शूद्रक है। चन्द्रमा के शाप के कारण पुण्डरीक मन्त्री शुकनास का पुत्र वैशम्पायन होता है और वही महाश्वेता के शाप से शुक (तोता) होता है। रोहिणी तारा ही चन्द्रमा का साथ बनाये रखने के लिये कुलतू राजा की पुत्री पत्रलेखा होकर चन्द्रापीड के साथ रहती है। पुण्डरीक का मित्र कपिंजल ही ऋषि शाप के कारण इन्द्रायुध नामक धोड़े के रूप में जन्म लेता है और चन्द्रापीड के पास रहता है। चाण्डालकन्या वस्तुतः पूर्वजन्म की लक्ष्मी है और वह पुण्डरीक की मां है। पुत्र को कामावेशरूपी पतन के लिये वह चांडालकन्या बनती है और शुकरूपधारी पुण्डरीक को अपने नियंत्रण में रखती है।

मूलकथा– (कथामुख) :

विदिशा के राजा शूद्रक के दरबार में एक चाण्डालकन्या ने एक अत्यन्त मेधावी और मनुष्य की वाणी में बोलने वाला शुक राजा को समर्पित किया। राजा के पूछने पर तोते ने बताया कि उसकी माता मर गई है और पिता को शिकारियों ने पकड़ लिया है। मुझे जाबालि ऋषि के शिष्य पकड़ कर आश्रम में ले गये। इसके बाद जाबालि ऋषि ने तोते के पूर्वजन्म का विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया–

पूर्वार्ध की कथा :

उज्जयिनी के राजा तारापीड और रानी विलासवती को तपस्या से चन्द्रापीड नामक पुत्र प्राप्त हुआ। राजा के सुयोग्य मंत्री शुकनाश के वैशम्पायन नामक पुत्र हुआ। दोनों की शिक्षा गुरूकुल में हुई। दोनों विद्याओं में पारंगत हो गये। युवराज पद पर अभिषेक के समय मंत्री शुकनास ने चन्द्रापीड को अत्यन्त सारगर्भित उपदेश दिया। उसी समय चन्द्रापीड और वैशम्पायन दिग्विजय के लिये निकल पड़े। किन्नर युगल का पीछा करते हुए इन्द्रायुध पर सवार चन्द्रापीड़ अच्छोद सरोवर प पहुंचा। वहां एक युवा तपस्विनी 'महाश्वेता' से उसका परिचय हुआ। महाश्वेता ने आत्मकथा वर्णन करते हुए बताया कि पुण्डरीक नामक एक ऋषि कुमार से उसका प्रेम हो गया था, परन्तु मिलने से पूर्व ही पुण्डरीक कामपीड़ा से दिवंगत हो गया। तब से वह इस अच्छोद सरोवर पर तपस्विनी का जीवन व्यतीत कर रही थी। तत्पश्चात् महाश्वेता अपनी सखी कादम्बरी से मिलाने के लिये चन्द्रापीड को ले जाती है। कादम्बरी ने भी कौमार्यव्रत धारण किया हुआ था। प्रथम मिलन में ही चन्द्रापीड और कादम्बरी परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। इसी समय पिता के बुलाने पर चन्द्रपीड उज्जयिनी लौटता है और सेनासहित वैशम्पायन को बाद में आने के लिये छोड़ देता है। बाणभट्टकृत कथा यहां समाप्त हो जाती है।

उत्तरार्ध की कथा, बाणपुत्र भूषणभट्ट कृत :

बहुत समय तक वैशम्पायन के न लौटने पर चिन्तित चन्द्रापीड उसकी खोज में अच्छोद सरोवर पर पहुँचता है। वहाँ

महाश्वेता ने बताया कि वैशम्पायन मुझ पर आसक्त हो गया था, अतः मैंने उसे शुक (तोता होने का शाप दे दिया था। अपने मित्र के दुःख से चन्द्रापीड के भी प्राण निकल गये। तभी कादम्बरी वहां आती है और प्रिय के वियोग में प्राण देना चाहती है। तभी आकाशवाणी उसे रोकती है और आश्वासन देती है कि शीघ्र ही तुम दोनों सखियों का अपने प्रेमी से पुनर्मिलन होगा। (यहां जाबालि द्वारा वर्णित कथा समाप्त होती है।)

ऋषि जाबालि से अपने पूर्व जन्म का विवरण सुनते ही शुक को महाश्वेता की स्मृति सताने लगती है। तोते ने राजा शूद्रक से कहा कि मैं महाश्वेता से मिलने के लिये अधीर होकर उड़ पड़ा। इसी बीच इस चाण्डालकन्या ने मुझे पकड़ लिया और आपके पास ले आई है। तत्पश्चात् चाण्डालकन्या ने राजा को बताया कि मैं पुण्डरीक (इस जन्म में वैशम्पायन) की माता हूं। आप भी पूर्वजन्म में चन्द्रापीड थे। यह सुनते ही राजा शूद्रक को कादम्बरी की तीव्र स्मृति हो उठी और वे प्राणहीन हो गये। उधर चन्द्रपीड जीवित हो गये। तोते की कथा समाप्त होने पर शाप का समय समाप्त हो गया था। तोता भी पुण्डरीक हो गया। इस प्रकार चन्द्रापीड कादम्बरी और पुण्डरीक महाश्वेता का पुनर्मिलन हो गया। वे दोनों युगल अनेक वर्षो तक सुखमय जीवन व्यतीत करते रहे।

समीक्षा :

ऐसा प्रतीत होता है कि बाण को कादम्बरी की कथा का बीज गुणाढय कृत बृहत्कथा से प्राप्त हुआ है। कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी में राजा सुमनम् की कथा है। दोनों कथाओं की रूपरेखा में अत्यन्त साम्य है।[1]

1. विवरण के लिये देखे–कीय सं0 सा0इति0 (हिन्दी) पृष्ठ 383, कथासरित्सागर 59–22 से आगे, बृहत्कथामंजरी 16–183 से आगे, उस कथा में राजा सुमनस् दधीचि पुत्र रश्मिमान् बन जाते हैं और उनका मनोरथप्रभा से मिलन होता है। राजकुमार का प्रस्थान, राजकुमारी मकरन्दिका का पिता के शापवश निषाद कथा निषाद कन्या होना, शाप से खिन्न राजा का मर कर तोता होना, पुलस्य ऋषि द्वारा वर्णित स्वजीवनवृत्त का तोते द्वारा वर्णन, मकरन्दिका

का अपने पूर्व रूप में आना और प्रिय सोमप्रभा से मिलन आदि घटनायें कादम्बरी से बहुत मिलती हुई है। यहां यह कहना उपयुक्त हैं कि बाण ने रूपरेखा भले ही ली हो, पर उसने कथा को एक अत्यन्त नवीन रूप वे दिया है। पात्रों के नाम भिन्न हैं, पात्रों की संख्या दुगुनी हो गई है। कथा बहुत विस्तृत हो गई है, शुकनस जैसे योग्य मंत्री की नवीन सृष्टि है, चन्द्रपीड का मित्र वैशम्पायन नवीन कल्पना है, एक किन्नर के सीन पर दो किन्नरों का वर्णन है। वर्णनों में विशदता और व्यापकता, नायक नायिका के प्रेम की व्यापक अनुभूति और अभिव्यक्ति, कथा में स्वाभाविकता और परिष्कार, भाषा में लोच और कल्पना की ऊँची उड़ान, ये बाण की निजी विशेषतायें हैं। इन विशेषताओं के कारण की ऊँची उड़ान, ये बाण की निजी विशेषतायें हैं। इन विशेषताओं के कारण कादम्बरी नव परिधाना वधु की भांति निज नूतन और निज मनोरम प्रतीत होती है।

उत्तरार्ध की रचना बाण के पुत्र भूषणभट्ट (कुछ के मतानुसार भूषणबाण, पुलिन्द या पुलिनभट्ट) ने सुधीवृन्द की मनस्तुष्टि के लिये की है। बाण के योग्य पुत्र ने बहुत सफलता के साथ कथा पूर्ण की है।

बाण की शैली और काव्य सौन्दर्य :

बाण संस्कृत काव्य के मूर्धाभिषिक्त सम्राट हैं। बाण ने गद्य में पद्यों से अधिक चमत्कार प्रदर्शन किया है और प्रांजल तथा परिष्कृत पदावली के लिये एक आदर्श प्रस्तुत किया है। बाण ने भाव और भाषाा का अनुपम समन्वय किया है। अतः उनकी रीति पांचाली रीति की विशेषता है कि उसमें शब्द और अर्थ का समन्वय और सन्तुलन होता है। 'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचाली रीतिरिष्यते' (सरस्वतीकण्ठाभरण)। बाण ने इसका पूर्णतया निर्वाह ही नहीं किया है, अपितु उसका सर्वोत्कृष्ट आदर्श भी हमारे सामने रखा है। बाण की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने अपने दोनों गद्य काव्यों में शैली की सभी विशेषताओं का संग्रह करने का प्रयत्न किया है। किसी भी रूचि का व्यक्ति क्यों न हो, वह उनके ग्रन्थों में आनन्दानुभव कर सके, यह उनकी कामना रहीं है। अतएव हर्षचरित क प्रारम्भिक श्लोकों में कवि ने अपनी भावना

अभिव्यक्त की है कि उदीच्य (उत्तर के) कवि श्लेष आदि अलंकारों पर बल देते हैं, प्रतीच्य (पश्चिम) के कवि केवल अर्थगौरव और अर्थगाम्भीर्य पर बल देते हैं, दाक्षिणात्य (दक्षिण के) कवि उत्प्रेक्षा पर बल देते हैं और गौड (वंगीय) कवि शब्दाडम्बर पर बल देते हैं। अतएव बाण का कथन है कि नवीन या चामत्कारिक अर्थ, उत्कृष्ट स्वभावोक्ति, सरल श्लेष प्रयोग, सुन्दर रसाभिव्यक्ति और ओज गुणयुक्त शब्दयोजना, ये सारे गुण एकत्र दुर्लभ हैं।

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः।। (हर्ष0 श्लोक 7)

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्सनमेकत्र दृष्करम्।। (हर्ष0 श्लोक 8)

बाण ने यह प्रयत्न किया है कि ये सभी गुण उनकी रचनाओं में प्राप्त हो। अतएव भाव, भाषा, रीति और अलंकारों के प्रयोग में वैविध्य प्राप्त होता है। ये सभी गुण हर्षचरित में उस परिपाक को प्राप्त नहीं हुए हैं। जितना परिपाक और परिष्कार कादम्बरी में दृष्टिगोचर होता है। कादम्बरी में एक ओर भावों की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर कल्पनाओं की मनोरम उड़ान है, एक ओर अर्थगौरव है तो दूसरी ओर मनोज शब्दावली का संचयन, एक ओर कलापक्ष का उज्जवल स्वरूप है तो दूसरी और भावपक्ष का सशक्त रूप, एक ओर प्रसाद और माधुर्य की मधुर मुस्कान है तो दूसरी ओर ओज की प्रोढ़ गंभीरता, एक ओर अनुप्रास, उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा की सरसता है तो दूसरी ओर विरोधाभास, श्लेष और परिसंख्या की श्रमसाध्य रचना, एक ओर थकाने वाले लम्बे समस्त पद हैं तो दूसरी सरस लघु पदावली, एक ओर सरलता है तो दूसरी ओर दुर्बोधता, एक ओर संभोग श्रृंगार की उद्दामता है तो दूसरी ओर विप्रलंभ श्रृंगार की भाव प्रवणता, एक ओर करूण रस है तो दूसरी ओर शान्त और भयानक, एक ओर बाह्य प्रकृति का सूक्ष्मतिसूक्ष्म निरीक्षण है तो दूसरी ओर मनोभाव, अन्तर्द्वन्द्व और अन्तःप्रकृति का मार्मिक क विवेचन। इस प्रकार बाण एक सफल अभिनेता के तुल्य नाना रूपों में उपस्थित होकर न केवल बाह्य सौन्दर्य से ही सहृदयों के हृदय को आकृष्ट करते हैं, अपितु अपनी भाव भंगी, सूक्ष्म कलात्मकता, मार्मिक अनुभूति और

आन्तरिक सुषमा के द्वारा नीरस में भी सरसता, हृदयहीन में भी सहृदय और निर्जीव में भी जीवन का संचार कर देते हैं। बाण के पास भावों का भण्डार है, कल्पना का अक्षय सागर है, शब्दों का अनन्त कोष है, शास्त्रीय ज्ञान की निधि है और कवि सुलभ उच्च कोटि की संवेदनशीलता है। इन गुणों के कारण सभी प्रकार के भावों को अत्यन्त प्रौढ़ और परिष्कृत रूप में वर्णन करने की शक्ति बाण में है। अतएव बाण के गुणों पर मुग्ध होकर अनेक कवियों ने उने विभिन्न गुणों की विविध प्रकार से प्रशंसा की है।

मधुरविजय की लेखिका गंगादेवी को बाण की रचना में सरस्वती की वीणा की झंकार सुनाई पड़ती है।

वाणीपाणिपरामृष्टा–वीणानिक्वाणहारिणीम्।
भावयन्ति कथं वाऽन्ये, भट्टबाणस्य भारतीम्।। (गंगादेवी)

विदग्धमुखमण्डल के लेखक धर्मदास को बाण की वाणी में एक अति सुन्दरी युवती का सा पदन्यास, सरसता और आकर्षण दिखाई देता है–

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरूणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।।
(धर्मदास)

गोवर्धनाचार्य का कथन है कि जिस प्रकार अधिक दक्षता प्राप्त करने के लिये शिखण्डिनी पूर्वजन्म में शिखण्डी हुआ, उसी प्रकार वाणी (सरस्वती) भी बाण (पुरूष) के रूप में अवतीर्ण हुई थी।

जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमवाप्तुं वाणी वाणी बभूव ह।। (गोवर्धनाचार्य)

प्रसन्नराघव के लेखक जयदेव ने बाण को कविता कामिनी के मनमन्दिर में निवास करने वाला कामदेव बताया है–

हर्षो हर्षो हृदयवसितः पंचबाणस्तु बाणः।
केषां नैषा कथय कविता कामिनी कौतुकाय।।

श्रीचन्द्रदेव ने लिखा है कि कुछ कवि श्लेष, कुछ शब्दयोजना, कुछ रसाभिव्यक्ति, कुछ अलंकार, कुछ अर्थगौरव या

कथावर्णन में चतुर होते हैं, परन्तु बाण कवि कुंजरों के गण्डस्थल का भेदन करने वाले एवं गहन कवितारूपी विन्ध्याटवी में चतुरतापूर्वक विचरण करने वाले सिंह हैं।

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरेऽ–
लंकारे कतिचित् सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविता–विन्ध्याटवी–चातुरी–
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणुस्तु पंचाननः।।

बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् :

कवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा, व्यापक ज्ञान, अद्भुत वर्णन शैली और प्रत्येक वर्ण्य विषय के सूक्ष्यतिसूक्ष्म वर्णन के आधार पर यह सुभाषित प्रचलित है कि बाण ने किसी विषय को अछूता नहीं छोड़ा हो उसने जो कुछ वर्णन कर दिया है, उससे आगे कहने के लिये कुछ शेष नहीं रहता।

बाण ने जितनी सुन्दरता, सहृदयता और सूक्ष्मदृष्टि से बाह्य प्रकृति का वर्णन किया है, उतनी ही गहराई से अन्तःप्रकृति और मनोभावों का विश्लेषण किया है। प्रत्येक वर्णन इतने व्यापक और सटीक होते हैं कि पाठक को यह अनुभव होता है कि उन परिस्थितियों में वह भी ऐसा ही सोचता या करता। प्रातःकाल वर्णन, सन्ध्यावर्णन, शूद्रकवर्णन, चाण्डालकन्या वर्णन, विन्ध्याटवी वर्णन, शबरसैन्यवर्णन, जाबाल्याश्रमवर्णन, जाबालिवर्णन, उज्जयिनीवर्णन, तारापीडवर्णन, इन्द्रायुधवर्णन, अच्छोद सरोवरवर्णन, महाश्वेतावर्णन, कादम्बरीवर्णन आदि में बाण ने वर्णन ही नहीं किया है, अपितु प्रत्येक वस्तु का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। इसी प्रकार विलासवती के पुत्रहीनताजन्य विषाद का वर्णन, चन्द्रापीड को देखकर स्त्रियों के हावभाव का वर्णन, पुण्डरीक को देखकर महाश्वेता के प्रेमोद्रेक का वर्णन, चन्द्रापीड को देखकर कादम्बरी के हार्दिक भावों का वर्णन, पुण्डरीक की मृत्यु पर महाश्वेता और कपिंजल के विलाप का वर्णन बाण की हार्दिक समवेदना और सहृदयता का परिचायक है। चन्द्रापीड को दिये गये शुकनासोपदेश में तो कवि की प्रतिभा का चरमोत्कर्ष परिलक्षित होता है। कवि की लेखनी भावोद्रेक में बहती हुई सी प्रतीत होती

है। शुकनासोपदेश में ऐसा प्रतीत होता है मानो सरस्वती साक्षात् मूर्तिमती होकर बोल रही है।

चम्पू काव्य की उत्पत्ति और विकास

चम्पू काव्य की परिभाषा :

चम्पू शब्द चुरादिगण की गत्यर्थक चपि (चम्पू) धातु से औणादिक उन् प्रत्यय करने पर और ऊङ् आदेश करने पर बनता है। 'चम्पयति' अर्थात् सहैव गमयति प्रयोजयति गद्यप इति चम्पूः अर्थात् जिस रचना में गद्य और पद्य का समान भाव से तथा सहयोगपूर्वक प्रयोग किया जाता है। उसे चम्पू कहते हैं। हरिदास भट्टाचार्य ने चम्पू शब्द की व्याख्या इस प्रकार की हैं– चमत्कृत्य पुनाति, सहृदयान् विस्मयीकृत्य प्रसादयति, इति चम्पूः। इसके अनुसार चम्पू में शब्द चमत्कार और अर्थ प्रसाद गुण होना चाहिये। चम्पू में वर्णनात्मक अंश के लिये गद्य का प्रयोग होता है और अर्थगौरव वाले अंशों के लिये पद्य का प्रयोग किया जाता है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में गद्य और पद्य मिश्रित रचना को चम्पू कहा है।

गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते। (सा0दर्पण 6–336)

भोज ने चम्पू रामायण में चम्पू की विशेषता बताई है कि उसमें पद्य के संमिश्रण से गद्य उसी प्रकार आह्लादक हो जाता है, जिस प्रकार वाद्य के मिश्रण से गान।

गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्तिः, हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
तस्माद् दधातु कविमार्गजुषां सुखायं, चम्पू–प्रबन्धरचनां रसना मदी।।
(बालकाण्ड 3)

अग्निपुराण में भी चम्पू का प्रयोग मिलता है। (मिश्रं चम्पूरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा, अग्नि0 336–38)। काव्यानुशासन के कर्ता हेमचन्द्र ने चम्पू में अंक (कोई विशेष पद) और उच्छवासों में विभाजन को भी आवश्यक माना है। (गद्यमद्यमयी सांका सोच्छ्वासा चम्पूः)। हेमचन्द्र का यह लक्षण नलचम्पू आदि के आधार पर बना है।

चम्पू काव्य का विकास :

चम्पू परंपरा का प्रारम्भ हमें अथर्ववेद में प्राप्त होता है। इसमें गद्य और पद्य का मिश्रित रूप से प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी और काठक संहिताओं में गद्य और पद्य का मिश्रित रूप मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उपाख्यानों में भी गद्य और पद्य का प्रयोग किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान चम्पू शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। कठ और प्रश्न उपनिषदों में गद्य पद्य मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया है।

वैदिक साहित्य के पश्चात् महाभारत, विष्णु पुराण और भागवत पुराण में भी गद्य पद्य का मिश्रण प्राप्त होता है। इसके पश्चात् बौद्ध जातक कथाओं में हमें चम्पू पद्धति का दर्शन होता है। इनमें विशेष उल्लेखनीय है–अवदानशतक, दिव्यावदान और आर्यशूर रचित जातकमाला। इसके पश्चात् चतुर्थ शताब्दी ई9 से लेकर बाद में शिलालेखों में भी चम्पू पद्धति का अनुकरण मिलता है। चम्पू का सर्वप्रथम पारिभाषिक विश्लेषण दण्डी (600ई0) के काव्यादर्श में प्राप्त होता है।

अब तक उपलब्ध साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नलचम्पू के रचयिता त्रिविक्रम भट्ट ही सर्वप्रथम काव्य रूप में इस पद्धति के प्रवर्तक हैं। त्रिविक्रम भट्ट का समय 10 वीं शताब्दी ई0 का पूर्वार्द्ध है। इसके पश्चात् 959 ई0 में लिखित सोमदेव सूरि का यशस्तिलक चम्पू है। इसके पश्चात् चम्पू काव्य की एक स्वतंत्र धारा चल पड़ी है।

त्रिविक्रम भट्ट :

जीवनवृत्त और कृतित्व :

त्रिविक्रम भट्ट के नलचम्पू के प्रारम्भ में अपना वंश परिचय दिया है। तदनुसार ये शांडिल्य गोत्र के ब्राह्मण थे। इनके पितामह श्रीधर थे। श्रीधर के पुत्र देवादित्य (अथवा नेमादित्य) थे और इनके पुत्र त्रिविक्रम भट्ट थे। नलचम्पू के जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः (20) 'मन्दधीः' (21) 'जानाति हि पुनः सम्यक् कविरेव कवेः श्रमः' (23) से ज्ञात होता है कि ये बाल्यकाल में मन्दबुद्धि थे और कठिन परिश्रम करके विद्वत्ता प्राप्त की थी।

नलचम्पू की कथा अपूर्ण है और उसमें केवल सात उच्छ्वास हैं। इस विषय में विद्वानों में एक किंवदन्ती प्रचलित है कि त्रिविक्रम के पिता नेमादित्य अपने समय के मर्धन्य विद्वान् थे। वे एक राजा के सभा पण्डित थे। वे कार्यवश प्रवास में गये थे। इसी समय एक विरोधी पण्डित ने आकर राजा से कहा कि मैं आपके सभापण्डित से शास्त्रार्थ करा चाहता हूँ। नेमादित्य को बुलाने राजसेवक गये, पर वे घर पर नहीं थे। त्रिविक्रम मन्दबुद्धि थे, अतः उन्हें अपने ऊपर क्षोम हुआ। उन्होंने सरस्वती से प्रार्थना की कि वह उसके पिता की लज्जा रखने के लिये शक्ति दे कि वह अपने विरोधी पण्डित को हरा सके। सरस्वती ने प्रसन्न होकर उसके पिता के आने तक के लिये उसे अमोघ पांण्डित्य दे दिया। उसने अपने विरोधी पण्डित को हरा दिया। त्रिविक्रम ने बाद में सोचा कि सरस्वती के वरदान का लाभ उठाया जाये, अतः उसने नलचम्पू लिखना प्रारम्भ कर दिया। पिता के आने तक उसने इसके 7 उच्छ्वास लिखे थे। पिता के आते ही सरस्वती का वरदान समाप्त हो गया और वह पुनः ज्ञानहीन हो गया। यह कथा पूर्णतया कपोल कल्पित ज्ञात होती है। 'जानाति हि पुनः सम्यक् कविरेव कवेः श्रमम् से स्पष्ट है कि कवि ने अपने परिश्रम से यह गन्थ बनाया है, न कि सरस्वती के वरदान से। ग्रन्थ की अपूर्णता का कारण बाण आदि की कृतियों के तुल्य कोई विघ्न विशेष समझना चाहिये।

त्रिविक्रम भट्ट की दो रचनायें प्रसिद्ध हैं– नलचम्पू और मदालसा चम्पू। नलचम्पू के कारण ही त्रिविक्रम भट्ट का नाम गद्यकारों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें श्लेष की अपूर्व छटा दृष्टिगोचर होती है। मदालसाचम्पू को प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हुई।

समय :

त्रिविक्रम भट्ट ने बाण का उल्लेख किया है। अतः इनका समय 600 ई0 से पूर्व नहीं हो सकता। राजा भोज ने सरस्वती कंठाभरण में नलचम्पू का एक श्लोक उद्धृत किया है। अतः ये भोजराज (11वीं शती ई0) से बाद के नहीं हैं। ये राष्ट्रकूटवंशी इन्द्रराज तृतीय के आश्रित कवि थे। राष्ट्रकूट राजाओं की राजधानी मान्यखेट (बरार) थी। उनका 915 ई0 का एक अभिलेख

प्राप्त होता है, इसमें इन्द्रराज और त्रिविक्रम का उल्लेख है। यह अभिलेख नवसारी से प्राप्त हुआ है। इससे प्राप्त होता है कि इनके पिता का नाम नेमादित्य था और ये इन्द्रराज के अधीनस्थ कवि थे। अतः इनका समय 915 ई0 के लगभग सिद्ध होता है।

नलचम्पू की कथा :

नलचम्पू 7 उच्छ्वासों में विभक्त हैं। इसमें नल और दमयन्ती की प्रसिद्ध प्रणय कथा वर्णित है। ग्रन्थ अधूरा है, अतः इसमें देवों का संवाद लेकर नल का दमयन्ती के प्रासाद में पहुंचने तथा दोनों का साक्षात्कार एवं परस्पर आसक्त होने तक की कथा वर्णित है।

त्रिविक्रम भट्ट की शैली :

त्रिविक्रम भट्ट अपनी श्लेष प्रधान रचना के लिये प्रसिद्ध हैं। इनकी रचना में प्रासाद और माधुर्य गुण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। कवि ने मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में कवियों का आदर्श बताया है कि उनकी कविता में अमृत का रसास्वाद रहना चाहिये।[4] उसमें रसों का चमत्कार होना चाहिये, जिससे विद्वानों के हृदय को आनन्द प्राप्त हो और उसमें श्रृंगारादि रसों की प्रौढ़ता हो। कविता में प्रसाद गुण हो, कान्ति नामक गुण हो और श्लेष अलंकार की मधुर छटा हो। साथ ही कविता का इतना सुन्दर प्रभाव हो कि सुनने वाला आनन्द से विभोर हो जाये।[1]

1. शश्वद् बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा। नल0 1–14

2. पर्वतभेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतंगहनम्।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्चत पयोष्णी।।
नल 6–29

3. श्रीत्रिविक्रमभट्टेन नेमादित्यस्य सूनुना।
कृता शस्ता प्रशस्तेयम् इन्द्रराजाङ्घ्रिसेविना।।
(एपिग्राफिका इंडिका) भाग 9 पृष्ठ 32

4. तदनु च विजयन्ते कीर्तिभाजां कवीनाम्
असकृदमृतबिन्दुस्यन्दिनो वाग्विलासाः।। नल0 1

कवि यह स्पष्ट रूप से मानता है कि सभंग श्लेष के प्रयोग के कारण अवश्य कुछ कठिनाई आ जाती है, परन्तु योग्य कवि

किसी एक रस को अपनाकर नहीं चलता है।[3] कविता में कहीं सरलता और कहीं कठिनता दोनों ही गुण होने चाहिये। इन लक्षणों को ध्यान में रखकर यदि त्रिविक्रम भट्ट की आलोचना की जाती है, तो वे अपनी प्रतिज्ञा पर खरे उतरते हैं। उनकी कविता में कहीं प्रसाद है तो कहीं, माधुर्य, कहीं सरलता है तो कहीं कठिनता, कहीं सरस पदावली है तो कहीं कठिन, कहीं अनुप्रास आदि की छटा है तो कहीं श्लेष का प्रखर पाण्डित्य। इस प्रकार उनकी कविता में विविध विरोधी गुणों का समन्वय देखने को मिलता है।

नलचम्पू की विशेषता है कि उसके श्लेष वाले सलि भी अधिकांश में सुबोध हैं। कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। कहीं–कहीं बाण की सी मधुर पदावली के दर्शन होते हैं। श्लेष के साथ ही अनुप्रास, यमक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या आदि अलंकारों की भी मनोरम कान्ति देखने को मिलती है। कवि ने वाल्मीकि की वन्दना करते हुए विरोधाभास और श्लेष का जो आश्रय लिया है, वह विद्वद्वृन्द के द्वारा अत्यन्त प्रशंसनीय माना गया है।

सदुषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा।। (नल0 1–11)

रामायण की कथा में खर और दूषण राक्षस हैं, फिर भी कथा कोमल और निर्दोष हैं। वस्तुतः कथा में कोई तीक्ष्णता और दोष नहीं है। इसी प्रकार सुन्दर पकने पर कोमल हो जाता है, इसी प्रकार काव्य में भी रसों के अनुकूल कहीं कठोरता और कहीं कोमलता होती है।

काव्यस्याम्रफलस्येव कोमलस्येतरस्य च।
बन्धच्छायाविशेषेण रसोऽप्यन्यादृशो भवेत्।। (नल0 1–17)

1. अगाधान्तः परिस्पन्दं विबुधानन्दमन्दिरम्।
वन्दे रसान्तरप्रौढं स्रोतः सारस्वतं वहत्।। नल0 3

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः।
भवन्ति कस्यचि् पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः।। नल0 4

2. वाचं काठिन्यमाान्ति भंगश्लेषविशेषतः।
नोद्वेगस्तत्र कर्तव्यो यस्मान्नैको रसः कवेः।। नल0 1–16

कवि ने कुकवियों की तुलना छोटे बालकों से की है, जो जनता को अरूचिकर होते हैं और प्रौढ़ पदविन्यास में अदक्ष होते हैं। ऐसे कवि बहुत सी निःसार बातें कहते हैं। बच्चे केवल अपनी माता को रुचिकर होते हैं और अपना लार पीते रहते हैं। श्लेष का आश्रय लेकर दोनों अर्थो की अभिव्यक्ति की गई है।

अप्रगल्भा पदन्यासे जननीरागहेतवः।
सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव।। (नल0 1–6)

कवि का आर्यावर्त वर्णन वस्तुतः प्रशंसनीय है। इसमें सरल और सरस पदावली के साथ ही परिसंख्या और श्लेष अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। इसमें भाषाा–सौष्ठव और माधुर्य गुण का समन्वय देखे–

सारःसकलसंसारचक्रस्य, शरण्यः पुण्यकारिणाम्, धाम धर्मस्य, आस्पदं सम्पादाम्, आश्रयः श्रेयसाम्, आकरः साधुव्यवहार–रत्नानाम्, आर्यावर्तो देशः। (उच्छ्वास 1)

परिसंख्या का प्रयोग भी उत्तम बन पड़ा है। विभिन्न दुर्गुण अन्य स्थानों पर थे, पर प्रजा में नहीं थे।

स्फोटप्रवादो वैयाकरणेषु, ग्रहसंक्रान्तिः ज्योतिःशास्त्रेषु, भूतविकारवादः सांख्येषु, क्षयस्तिथिषु, दृश्यते न प्रजासु।
(उच्छ्वास 1)

आर्यावतं स्वर्ग से भी बढ़कर है। स्वर्ग में एक गौरी (पार्वती) है, यहां घर–घर में गौरी (गौर वर्ण) स्त्रियाँ हैं। स्वर्ग में एक महेश्वर (शिव) हैं, यहाँ अनेक महेश्वर (महाराजा) हैं। स्वर्ग में चार लोकपाल हैं और एक ही धन के दाता कुबेर हैं, परन्तु यहाँ पर अनेक लोकपाल हैं और अनेक दानी हैं। वहाँ का राजा सुराधिप (शराबी, देवों का स्वामी) हैं, यहाँ का राजा शराबी नहीं है। स्वर्ग में विनायक (नेता का अभाव, गणेश) हैं, यहाँ नेता का अभाव नहीं है।

कथं चासौ स्वर्गात्र विशिष्यते। यत्र गृहे–गृहे गौर्यः स्त्रियः, महेश्वरो लोकः, सश्रीका हरयः, पदे पदे धनदाः सन्ति लोकपालाः। केवलं च सुराधिपो राजा। न च विनायकः कश्चित्।। (उच्छ्वास 1)

फाल्गुन मास में वृक्षों की शाखा पत्तों से रहित होती हैं, परन्तु भारतवर्ष में किसी को कोई विपत्ति नहीं होती है।

भवन्ति फाल्गुने मासि वृक्षशाखा विपल्लवाः।
जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपल्लवाः।।

(नल0 1–27)

इसमें विपल्लवाः (पत्ते से रहित, विपत्ति–रहित) में श्लेष का सुन्दर प्रयोग है। राजा नल के महामंत्री श्रुतशील के वर्णन में विरोधाभास का अत्यन्त प्रभावोत्पादक प्रयोग है–

ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मवित्तापहारी, स्त्रीयुक्तोऽपि प्रायशो विप्रयुक्तः।
सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः, को वा तादृग् दृश्यते श्रूयते वा।।

(नल0 1–39)

इसमें ब्रह्मवित्तापहारी (1. ब्राह्मणों का धन हरने वाला, ब्रह्मवेत्ता और संताप को हरने वाला), विप्रयुक्तः (1. वियुक्त, 2. ब्राह्मणों से युक्त), सद्वेषः (1. द्वेष से युक्त, 2. सुन्दर वेष वाला) पदों का पहला अर्थ लेने पर विरोधभास है और दूसरा अर्थ लेने पर परिहार है। वह मन्त्री ब्राह्मणो का हितकारी था, ब्रह्मवेत्ता था, संतापहारी था, स्त्री से युक्त था, प्रायः ब्राह्मणों से युक्त रहता था, सुन्दर वेष वाला था और द्वेष से रहित था। उसके समान अन्य कोई नहीं था।

यमक अलंकार की सुन्द छटा भी कुछ कम नहीं है। जैसे–

धुतकदम्ब–कबदम्बक–निष्पतन्–नव–पराग–परागम–मन्थराः।
हृत–तुषार–तुषा रतिरागिणां प्रियतमा मरुतो मरूतो मरूतोववुः।।

(नल0 1–43)

कवि का भाव–सौन्दर्य भी अनेक स्थानों पर दर्शनीय है। कवि को अनूठी कल्पना के कारण यमुना–त्रिविक्रम उपाधि से विभूषित किया गया है। कवि ने प्रातःकाल का वर्णन करते हुए रात्रि के काले अंधकार और प्रातःकाल के प्रकाश की सुन्दर

कल्पना यमुना और गंगा के जल से की है तथा उदयगिरि को संगमस्थल बताया है। कवि का प्रसिद्ध पद्य है–

उदयगिरि–गतायां प्राक्प्रभा–पाण्डुतायाम्
अनुसरति निशीथे श्रृंगमस्ताचलस्य।
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योममध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च।। (नल0 6–1)

नल ने दमयन्ती से अनुरोध किया कि वह देवताओं में से किसी एक को वरण कर ले। इस पर दमयन्ती का उत्तर है कि वह केवल नल से ही विवाह करेगी। प्रत्येक की अपनी रुचि भिन्न होती है। किसी को कोई प्रिय होता है, अन्य को नहीं। यही कारण है कि बसन्त के मनोरम मौसम में भी मालती नहीं खिलती। यहाँ पर कोमल भावों को मधुर शब्दों में रखा गया है।

भवति हृदयहारी क्वापि कस्यापि कश्चित्
न खलु गुणविशेषः प्रेमबन्ध–प्रयोगे।
किसलयति वनान्ते कोकिलालापरम्ये
विकसति न वसन्ते मालती कोऽत्र हेतुः।। (नल0 7–47)

चतुर्थ उच्छ्वास में राजा नल को राममंत्री सालंकायन ने जो उपदेश दिया है, वह अत्यन्त विद्वतापूर्ण हैं और कादम्बरी के शुकनासोपदेश का स्मरण कराता है।

कुमार, राजहंसोऽपि अहंसरूपः इति मा स्म मोहवान् भूः। सत्तात्, सुविषमेघवर्तिनि विद्युतद्दविलास इवास्थिरे स्थितः तारूण्ये मा स्म विस्मरः स्मयेन विनयम्। आवर्जय गुणान्, अभ्यस्य कलाः, त्यज जाड्यम्, भज माधुर्यम्। मा गाः स्त्रियाः श्रियो वा विश्वासम्। अधिकमलवसतिरनार्य–संगता स्त्रीश्च श्रीश्च कं न प्रतारयति।

कवि ने अनेक स्थानों पर प्रकृति का चित्रण किया है। इन वर्णनों में कादम्बरी के तुल्य विस्तृत वर्णन हैं और अलंकारों का प्रयोग है। विन्ध्य वन के वर्णन में विरोधाभास अलंकार का प्रयोग मनोहर है–

सममसमं च, निम्नागात्रमनिम्नगात्रं च, ग्रावविषमम् अग्रावविषमं च, सश्वापदम् अश्वापदं च, सपादम् अपादपं च, विन्ध्यस्कन्धम् उल्लंघ्य। –(उ0 6)

विन्ध्यांचल के पेड़ों के वर्णन में कवि ने अपनी सहृदयता का परिचय दिया है ये वृक्ष अपनी मनोहरता के कारण कामदेव के निवास स्थान हैं, शबरियों के लिये संकेत गृह है। भ्रमरियों के गान को सुनकर पथिक रुक जाते हैं। ये वृक्ष प्रिय बन्धुओं के तुल्य हैं और दूर होने पर सभी के हृदयों को खिन्न करते हैं।

आवासः कुसुमायुधस्य शबरीसंकेत–लीलागृहाः
पुष्पामोद–मिलन्मधुव्रत–वधू–झंकार–रुद्धाध्वगाः।
सुस्निग्धाः प्रियबान्धवा इव दृशो दूरीभवन्तश्चिरात्
कस्यैते न बहन्ति हन्त हृदयं विन्ध्याचलस्य द्रुमाः।।

(नल0 6–611)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि त्रिविक्रम भट्ट पाण्डित्य के आगार, अलंकार प्रयोग में विदग्ध और वैदुष्य की कसौटी हैं। इनके काव्य में श्रृंगर का सुन्दर परिपाक, वर्णनों की मधुरता, कल्पना की मनोज्ञता और श्लेष की अनुपम छटा समन्वित हैं। अतएव विद्वत्समुदाय में त्रिविक्रम भट्ट विशेष आदर के पात्र हुए हैं।

त्रिविक्रम भट्ट की न्यूनतायें :

त्रिविक्रम भट्ट की विशेषताओं के साथ ही उनमें कतिपय न्यूनतायें भी हैं, जिनकी ओर आलोचकों ने ध्यान आकृष्ट किया है। संक्षेप में ये न्यूनतायें निम्नलिखित हैं–

1. नल दमयन्ती क कथा का बहुत थोड़ा सा अंश इसमें आने पाया है। कवि ने अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये विविध वर्णनों का आश्रय लिया है, जिससे कथा प्रवाह सर्वथा अवरुद्ध हो गया है।
2. सुबन्धु के तुल्य ये भी शाब्दी क्रीड़ा और अलंकार प्रयोग में मग्न हो गये हैं, अतः रस परिपाक पर पूरा ध्यान न देने के दोषी हैं।
3. कलात्मकता के कारण इनका भावपक्ष अत्यन्त निर्बल हो गया है। उसमें स्वाभाविकता और गतिशीलता नहीं है।
4. कुछ स्थलों पर श्लेष, परिसंख्या आदि के प्रयोग अत्यन्त श्रमसाध्य हैं, अतः इसकी नैसर्गिक सुषमा में अत्यन्त व्याघात उत्पन्न हो गया है।

5. कथा अपूर्ण है और ऐसे स्ल पर समाप्त की गयी है, जहाँ पर पाठक की उत्सुकता बनी रहने के कारण रसास्वाद भंग हो जाता है। कवि के गुणों को देखते हुए ये दोष क्षम्य हैं।

विविध चम्पू ग्रन्थ :

चम्पू काव्यों की एक बृहत परंपरा है। इसमें से विशेष उल्लेखनीय चम्पू ये हैं–

हरिश्चन्द्र कृत जीवन्धरचम्पू :

एक जैन कवि हरिचन्द्र ने जैन मुनि जीवन्धर के जीवन को लेकर इस चम्पू की रचना की है। इसका समय 900 ई0 के बाद का है, क्योंकि यह ग्रन्थ 850 ई0 में लिखे गये उत्तरपुराण पर आश्रित हैं। इसमें माघ और वाक्पति का सफल अनुकरण है।

जैन सोमदेवसूरि कृत यशस्तिलकचम्पू :

जैन कवि सोमदेवसूरि ने 959 ई0 में यशस्तिलक चम्पू की रचना की थी। ये नेमिदेव के शिष्य थे। ये राष्ट्रकूट के राजा कृष्ण के समकालीन और उनके सामन्त चालुक्त राजा अरिकेसरी तृतीय के आश्रित कवि थे। इसमें 8 आश्वास हैं। अन्तिम तीन आश्वास सामान्य जनों के लिये उपदेशात्मक हैं और उनका स्थान एक धार्मिक ग्रन्थ के तुल्य है। यह कादम्बरी के आदर्श पर लिखा गया है। इसमें भी कई जन्मों की कथायें हैं। अतएव डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल का यह कथन उपयुक्त है कि– इस ग्रन्थ की कथा कुछ उलझी हुई है। बाण की कादम्बरी की भाँति इसके पात्र भी कई जन्मों में हमारे सामने आते हैं। बीच–बीच में वर्णन बहुत लम्बे हैं, जिसमें कथा का सूत्र खो जाता है।

यह ग्रन्थ धर्म के प्रचारार्थ लिखा गया है। इसमें काव्य के दो रूप सामने आते हैं–काव्यात्मक और सुभाषित प्रधान। इसमें राजा मारिदत्त एक यज्ञ में नरबलि देना चाहता है। एक सुदत्त मुनि ने ऐसे यज्ञ की निरर्थकता बताई और वह राजा जैन हो गया। इसके उपदेश महत्त्वपूर्ण हैं। एक उपदेश में बताया गया है कि मनुष्य तृष्णा में पड़ा हुआ सदा दुःख भोगता है और शीघ्र ही मृत्यु को करने वाल यम के डंडे को भूल जाता है।

त्वं मन्दिरद्रविणदारतनूद्वहाद्यै
स्तृष्णातमोभिरनुबान्धिभिरस्तबुद्धिः।
क्लिश्नास्यहर्निशमिमं न तु चित्त वेत्सि
दण्डं यमस्य निपतन्तमकाण्ड एव।।

भोजराज कृत रामायण चम्पू :

रामायण चम्पू के लेखक राजा भोज (1005 से 1054 ई0) माने जाते हैं। ग्रन्थ के अन्त में लेखक को विदर्भराज कहा गया है, अतः लेखक के विषय में भी विवाद है। भोज ने वाल्मीकि रामायण का आश्रय लेकर राम कथा किष्किन्धा काण्ड तक लिखी है और लक्ष्मण ने युद्ध काण्ड तथा वेंकटराज ने उत्तरकाण्ड लिखकर इसकी पूर्ति की है। यह वैदर्भी रीति में लिखा गया है। यह सर्वोत्तम चम्पू ग्रन्थों में से एक है। इसका अधिकांश गद्य भाग सरल और लघु पदावली में लिखा गया है।

अभिनव कालिदास (11वीं शताब्दी ई0) ने भागवत चम्पू लिखा है। इसमें 6 अध्यायों में भागवत की कथा वर्णित है। इसके लेखक के विषय में भी विवाद है। सोड्ढल (11वीं शताब्दी ई0) ने उदयसुन्दरीकथा की रचना की है। यह गद्य पद्यात्मक होने से चम्पू में समविष्ट की जाती है। सोड्ढल गुजरात के कायस्थ कुल में उत्पन्न हुए थे। कवि ने प्रारम्भ में अपना वंश परिचय दिया है। इसमें 8 उच्छ्वासों में नागराज कुमारी उदय कुमारी और प्रतिष्ठान के राजा मलयवाहन के विवाह का वर्णन है। सोड्ढल का आदर्श बाण का हर्ष चरित है। बाण के अनुकरण पर इन्होंने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों के परिचयात्मक 25 श्लोक दिये हैं। बाण के विषय में उनका प्रसिद्ध पद्य है–

बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य,
शक्ति न केऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति।।

बाण के हर्षचरित्र में तीक्ष्ण शक्ति को देखकर कौन कवितारूपी अस्त्र के अभिमान को नहीं छोड़ देते। सोड्ढय ने बाण के अनुकरण पर समास प्रधान शैली को अपनाया है। उनके चम्पू में प्रसाद, माधुर्य और सुन्दर कल्पनाओं का भी समन्वय दिखाई देता है।

कमलिनी भुवनान्तरिते रवौ, व्यपगतालिकलापशिरोरुहा।
परिदधे विधवेव सुधाकर द्युतिविताननिषेण सितांशुकम्।।

रात्रि के समय कमलिनी रवि रूपी पति के वियोग में विधवा के तुल्य अपने भ्रमररूपी बालों को हटा देती है और चाँदनी रूपी सफेद वस्त्र धारण कर लेती है।

अनन्त भट्ट कृत भारत चम्पू :

अनन्त भट्ट के दो चम्पू ग्रन्थ माने जाते हैं– भारतचम्पू और भागवतचम्पू। इनमें से भारत चम्पू ही उपलब्ध हैं। यह 12 स्तम्बकों में हैं। यह एक विशालकाय चम्पू ग्रन्थ है। इसमें महाभारत की कथा संक्षेप में प्रस्तुत की गई है। इसमें गद्य के साथ लगभग एक हजार श्लोक हैं। यह ग्रन्थ वैदर्भी शैली में लिखा गया है। इसकी भाषा सरल, सरस और मनोज्ञ है। यह वीर रस का ग्रन्थ है। यह अपने सुन्दर पद्यों के लिये प्रसिद्ध है। नारायण भट्ट (1602 ई0) ने अनन्त भट्ट का उल्लेख किया है। अतः इनका समय 1500 ई0 के लगभग माना जाता है। इनकी कल्पनाएँ मनोरम हैं। कर्ण की मृत्यु के पश्चात् सूर्यास्त हो रहा है। कवि ने कल्पना की है कि सूर्य का पुत्र कर्ण युद्ध में मारा गया है, अतः उसका पिता अपने पुत्र के दुःख में क्षीणकान्ति होकर पश्चिम समुद्र के जल में स्नान करने के लिये गोता लगाने लगा।

ततः स्वकीयस्य तनूद्भवस्य वधाज्जले स्नातुमना इव द्राक्।
मन्दायमानद्युतिमालभारी मरीचिमाली निममज्ज सिन्धौ।।

रानी तिरुमलाम्बाकृत वरदाम्बिका परिणय चम्पू :

रानी तिरुमलाम्बा राजा अच्युतराय की पत्नी थीं। इनका राज्याभिषेक 1529 ई0 में हुआ था। इसमें लेखिका ने राजा अच्युतराय और रानी वरदाम्बिका की प्रणय और परिणय की कथा अत्यन्त मनोहर शैली में वर्णन की है। लेखिका ने वस्तुतः अपने ही परिणय का वरदाम्बिका के नाम से सचित्र वर्णन किया है। लेखिका का समय 1529 से 1540 ई0 माना जाता है, क्योंकि इस समय ही उसके पति का राज्याभिषेक हुआ था।

इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि डॉ0 लक्ष्मणसरूप, ओरियन्अल कालेज, लाहौर के प्रधानाचार्य को 1924 ई0 में तंजोर लाइब्रेरी से

प्राप्त हुई थी। डॉ0 लक्ष्मणसरूप और डॉ0 हरिदत्त ने इसका संपादन करके 1912 ई0 में इसे प्रकाशित किया था। यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रौढ़ शैली में लिखा गया है। भाषा परिमार्जित, सरस, सालंकार और पाण्डित्य पूर्ण है। लेखिका विविध कलाओं की कितनी मर्मज्ञ है। यह इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है। क्लिष्ट पदावली और लम्बे समासों के होने पर भी ग्रन्थ में अपूर्व आकर्षक है। इसमें पुरुष के सौन्दर्य का मार्मिक वर्णन हुआ है। यह ग्रन्थ संस्कृत वाड़मय के उत्थान में स्त्रियों का कितना योगदान है, इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

अन्य चम्पू ग्रन्थ :

13वीं शताब्दी ई0 :

13वीं शताब्दी ई0 के विशिष्ट चम्पूकार हैं– दिगम्बर जैन पं0 आशाघर सूरि (1243ई0 के लगभग) ने भरतेश्वराभ्युदय चम्पू लिखा है। इसमें जैन तीर्थकर आदिनाथ के पुत्र सम्राट भरत का जीवन चरित है। अर्हदास (13वीं शती उत्तरार्द्ध) ने जैन तीर्थकर पुरुदेव के संबन्ध में पुरुदेव चम्पू लिखा है। इनका दूसरा नाम अर्हत् भी है। इसकी भाषा ललित, सरल और अलंकृत दिवाकर ने 1299 ई0 में वाल्मीकि रामायण के आधार पर अमोघराघव चम्पू लिखा है।

14वीं शताब्दी ई0 :

अहोबल सूरि (14वीं उत्तरार्द्ध) ने दो चम्पू ग्रन्थ लिखे हैं– यतिराजविजय चम्पू और विरूपाक्ष बसन्तोत्सव चम्पू। प्रथम में 16 उल्लासों में रामानुजाचार्य का जीवन चरित है और द्वितीय में बसन्तोत्सव के वर्णन के साथ ही एक कृपण ब्राह्मण की कथा है और कुछ ऐतिहासिक सामग्री भी है। अमलाचार्य या अम्मल (14वीं उत्तरार्द्ध) ने रुक्मिणीपरिणय चम्पू ग्रन्थ लिखा है। यह भागवत और हरिवंश पुराण में वर्णित रुक्मिणी विवाह के आधार पर लिखगया है।

15वीं शती ई0 :

कवि तार्किक सिंह (15वीं उत्तरार्द्ध) ने रामानुजी सन्त वेदान्तदेशिक के जीवन पर वेदान्ताचार्य विजय चम्पू या आचार्य विजय चम्पू लिखा है।

16वीं शती ई0 :

कवि कर्णपूर (1524 ई0) ने आनन्द वृन्दावन चम्पू ग्रन्थ लिखा है। इनका मूल नाम परमानन्ददास है। इन्हें महाप्रभु चैतन्यदेव ने कर्णपूर उपाधि दी थी। इसमें भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर कृष्ण जन्म से लेकर यौवनावस्था तक की ललित क्रीड़ाओं का वर्णन है। इसमें कल्पना और वर्णनों की चतुरता देखी जा सकती है। इसमें 22 स्तबक है। 20वें स्तबक में नृत्य, विविध स्वरों, रागों और तानों आदि का वर्णन है। बल्लीसहाय कवि ने आचार्य दिग्विजयचम्पू (1539ई0 के लग भग) की रचना की है। इसमें शंकराचार्य के दिग्विजय का वर्णन है। यह सरल और प्रसाद गुणयुक्त शैली में लिखा गया है। इन्होंने काकुत्स्थ चम्पू नामक दूसरा चम्पू ग्रन्थ भी लिखा है। चिदम्बर (1600ई0 के लगभग) दो चम्पू ग्रन्थ लिखे हैं– भागवत चम्पू और पंचकल्याण चम्पू। ये राघवपाण्डवयादवीय काव्य के लेखक हैं। भागवत चम्पू में तीन स्तबकों में भागवत की कथा वर्णित हैं। पंचकल्याणचम्पू में श्लेष का आधार लेकर राम, कृष्ण, विष्णु, शिव और सुब्रह्मण्य के विवाह की कथा एक साथ वर्णित है। प्रत्येक श्लोक के पांच अर्थ हैं और प्रत्येक व्यक्ति से एक–एक अर्थ का सम्बन्ध होता है। शेषकृष्ण (16वीं ई0 उत्तरार्द्ध) ने पांच अध्यायों में पारिजाहरण चम्पू ग्रन्थ लिखा है। इसमें सपत्नी द्वेष का विस्तृत वर्णन है। कृष्ण ने नारद के द्वारा दिया गया पारिजात पुष्प अपनी प्रिया रुक्मिणी को दिया। इस पर उनकी दूसरी प्रिया सत्यभामा रूठ जाती है। उसको मनाने के लिये वे स्वर्ग से पारिजात वृक्ष लाते हैं। इसमें श्रृंगार रस मुख्य है।

दैवज्ञ सूर्य (1541 ई0 के लगभग) ने नृसिंह चम्पू की रचना की है। इसमें नरसिंहावतार की कथा वर्णित है। इसमें 5 उच्छवासों में प्रायः सभी रसों का वर्णन है। वीर रस मुख्य है। कृष्ण कवि (16वीं उत्तरर्द्ध) ने मन्दारमरन्दचम्पू लिखा है। यह एक लक्षण ग्रन्थ है। इसमें गन्धर्व दम्पती की कथा का आश्रय लेकर नायक, गुण, दोष, अलंकार, छन्दों आदि के लक्षण दिये गये हैं। चिरंजीव भट्टाचार्य शतावधान (16वीं शती ई0) ने दो चम्पू लिखे हैं– विद्वन्मोद तरंगिणी चम्पू और माधव चम्पू। प्रथम में 8 तरंग हैं।

इसमें शैव, वैष्णव आदि मतों का वर्णन करते हुए अन्त में समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाने का विधान है। माधव चम्पू में माधव और कलावती की प्रणय कथा वर्णित है। इसमें श्रृंगार रस तुल्य है। पद्मनाभ मिश्र ने 1577 ई0 में वीरभद्रदेव चम्पू लिखा है। इसमें तत्कालीन रीवाँ राज्य का वर्णन है।

कवि नारायण भट्ट (1560–1666 ई0) ने 15 चम्पू काव्य लिखे हैं। इनमें से दो चम्पू मुख्य हैं– स्वाहासुधाकर चम्पू और मत्स्यावतार प्रबन्ध। प्रथम में अग्नि की पत्नी स्वाहा और चन्द्रमा के प्रणय का वर्णन है। यह छोटे–छोटे ग्रामगीतों की पद्धति पर लिखा गया है। द्वितीय में शतपथ ब्राह्मण आदि में प्राप्त मत्स्यावतार की कथा वर्णित है। इनके अन्य कुछ चम्पू ग्रन्थों के नाम हैं–पांचाली स्वयंबर, नृगमोक्ष, राजसूय प्रबन्ध आदि। ये सभी चम्पू पौराणिक कथाओं पर निर्भर हैं। ये आशु कविता के रूप में लिखे गये हैं।

17वीं शती ई0 :

नीतिग्रन्थ वीरमित्रोदय के लेखक मित्रमिश्र (1605–1627ई0) ने श्रीकृष्ण के बाल जीवन के आधार पर आनन्दकन्द चम्पू लिखा है। इसमें भागवत के दशम स्कन्ध की कथा वर्णित है। इसमें ओज गुण की प्रधानता है और गौड़ी रीति है। नीलकण्ड दीक्षित ने 1637 ई0 में 5 आश्वासों में नीलकण्ड विजय चम्पू लिखा है। इसमें समुद्र मन्थन की कथा और शिव के द्वारा विषपान का वर्णन है। इसमें तत्कालीन विलासी जीवन पर कठोर व्यंग्य किया गया है। कवि का वक्रोक्ति अलंकार पर पूर्ण अधिकार है और वह अपने भावों को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ प्रकाशित कर सकता है। चक्रकवि (1650 ई0 के लगभग) ने द्रोपदी परिणय चम्पू लिखा है। इसमें महाभारत के आदिपर्व की कथा है। इसमें पाण्डवों के एकचक्रपुरी में निवास से लेकर इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर के राज्य करने तक की कथा वर्णित है।

वेंकटाध्वरी (1650ई0) ने चार चम्पू ग्रन्थ लिखे हैं– विश्वगुणादर्शचम्पू, वरदाभ्युदय चम्पू, उत्तरचम्पू और श्रीनिवास चम्पू। इनके पिता–माता रघुनाथ और सीताम्बरा है। ये कांची के निवासी थे। विश्वगुणा दर्श चम्पू में विश्वावसु और कृशानु नाम के

दो गन्धर्व विमान से विभिन्न तीर्थो की यात्रा करते हैं। विश्वावसु प्रत्येक वस्तु के गुणों का वर्णन करता है और कृशानु दोषों का। इस प्रकार यह ग्रन्थ संवाद के रूप में लिखा गया है। इसमें भारत का भौगोलिक वर्णन और तीर्थो के गुण दोषों का विशद चित्रण है। इसमें तत्कालीन प्रचलित रीतियों और प्रथाओं की त्रुटियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। कवि ने पुरोहित, ज्योतिषी, संगीतज्ञ, वैद्य और विभिन्न व्यवसायों में प्रचलित बुराइयों का विशद वर्णन किया है। कवि ने अनुप्रास का मनोहर प्रयोग किया है। वरदाभ्युदय चम्पू में कांची के देवता (कांजीवरम् मन्दिर) का महत्व वर्णित है। उत्तरचम्पू में रामायण के उत्तरकाण्ड की कथ वर्णित है। श्रीनिवासचम्पू में 10 अध्यायों में तिरुपति के समीपस्थ तिरुमलाइ में विद्यमान देवता की प्रशस्ति है। इन चारों ग्रन्थों में से विश्वगुणादर्श चम्पू का तमिल प्रान्त में बहुत अधिक प्रचार है।

राजचूड़ामणि दीक्षित (17वीं ई0 पूर्वार्द्ध) ने भारतचम्पू ग्रन्थ लिखा है। केशव भट्ट ने 1684 ई0 में 6 स्तबकों में नृसिंह चम्पू (प्रहलाद चम्पू) लिखा है। इसमें प्रह्लाद और नृसिंहावतार की कथा वर्णित है। धर्मराज (17वीं ई0 उत्तरार्द्ध) ने वेंकटेश चम्पू की रचना की है। इसमें तिरुपति के अधिष्ठातृ देवता का महत्त्व वर्णित है। नल्ला दीक्षित (1684–1710) ने धर्मविजय चम्पू लिखा है। इसमें उन्होंने अपने आश्रयदाता तंजीर के शासक मराठा शाहजी का जीवनचरित लिखे है।

संस्कृत नाटक का उद्भव एवं विकास

नाटक संस्कृत साहित्य का एक गौरवपूर्ण अंग है। भारतीय साहित्य के सौन्दर्य को विश्व के मनीषियों के सामने अभिव्यक्त करने वाला साहित्य अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक ही तो है। काव्य की अपेक्षा नाटक की प्रतिष्ठा सदा अधिक रही है। काव्य के आनन्द से वंचित रहने वाले व्यक्ति नाटक का मनोहर अभिनय देखकर अलौकिक आनन्द की अनुभूति करते रहे हैं।

नाटकों का उद्भव इतिहास का एक जटिल प्रश्न हैं अद्यावधि इस विषय पर विद्वानों में मतैव्य नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ में

संस्कृत के प्रसिद्ध नाटकों का प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत करने के साथ ही उसके उत्पत्ति एवं विकास पर भी प्रकाश डाला गया है।

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति :

भारतीय परम्परा :

भारतीय नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति की विवेचना करते हुए महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें ऐसे मनोरंजन की वस्तु दीजिये जो दृश्य और श्रव्य दोनों हो, जिसको चारों वर्णो के व्यक्ति समान रूप से अपना सकें। उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से सार भाग लेकर पंचम वेद नाट्यवेद की रचना की। उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद, कथोपकथन आदि), सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लिया।

तस्मात् सृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम्।। (ना0 1–12)

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदांगसंभवम्।। 1–16

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।। 1–17

ऋक्संवाद सूक्तवाद :

इस वाद के प्रवर्तकों में अधिकांश पाश्चात्त्य विद्वान् हैं। इनमें प्रो0 मैक्समूलर, प्रो0 सिल्वाँ लेवी, प्रो0 फॉन श्रोएदर और डॉ0 हर्टल मुख्य हैं। इनका विचार भारतीय परम्परा से बहुत कुछ मिलता–जुलता है। इनका कथन है कि ऋग्वेद में कई संवाद सूक्त हैं, जिनके आधार पर संस्कृत नाटकों की उत्त्पत्ति हुई। ऋग्वेद में प्राप्त संवाद सूक्तों की अभिनयात्मक व्याख्या की जा सकती है। जैसे– इन्द्र मरुत् संवाद (ऋ0 1–165, 1–170), अगस्त्य लोपामुद्रा संवाद, (ऋ0 1–179), विश्वामित्र नदी संवाद (ऋ0 3–33), वशिष्ठ सुदास संवाद (ऋ0 7–83), यम यमी संवाद (ऋ0 10–10), इन्द्रइन्द्राणी वृषाकपि संवाद (ऋ0 10–86), पुरुरवा उर्वशी संवाद (ऋ0 10–95), सरसापणि संवाद (ऋ0 10–108)।

प्रो0 ओल्डेनबर्ग, विन्डिश और पिशेल का भी मत है कि ये संवादात्मक सूक्त नाटकीय थे।

मृतात्म श्राद्धवाद :

प्रो0 रिजवे ने यह मत प्रस्तुत किया है कि विश्व की सभी संस्कृतियों में मृतात्माओं के प्रति श्रृद्धा प्रकट करने की परम्परा है। मृतात्माओं को प्रसन्न करने के लिये विभिन्न अभिनयात्मक आयोजन आज भी प्रचलित हैं। इनको ही नाटकों को पूर्वरूप मानना चाहिये।

पर्ववाद :

पाश्चात्य विद्वानों ने यह मत भी प्रस्तुत किया है कि जिस प्रकारी यूरोप में मे–पोल का पर्व अभिनय प्रधान ढंग से मनाया जाता है, उसी प्रकार प्राचीन समय में इन्द्रध्वज उत्सव पर अभिनयादि होते थे। बाद में भी पर्वो पर अभिनयादियुक्त आयोजन होने लगे। जैसे– बसन्तपंचमी और होली आदि के आयोजन। इस प्रकार के आयोजनों से ही नाटकों का उद्‌भव हुआ।

रासलीला वाद :

एक मत यह भी प्रस्तुत किया गया है कि कृष्ण की रासलीला तथा कृष्ण भक्ति के सम्बन्ध में आयोजित रासलीलाओं को नाटकों का आदि रूप मानना चाहिये।

स्वाँगवाद :

प्रो0 हिलब्रान्ड और टेअन कोनो का मत है कि लोकप्रिय स्वांगों से नाटकों की उत्पत्ति हुई है। उनका कथन है कि स्वांगों के साथ रामायण और महाभारत की कथाओं ने मिलकर नाटकों को जन्म दिया है।

पुत्तलिका नृत्यवाद :

डॉ0 पिशेल ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि प्राचीन काल में कठपुतली का नाच प्रचलित था। उसका ही विकसित रूप नाटक हुआ। संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त सूत्रधार (धागा पकड़ने वाला) शब्द इस कथन की पुष्टि करता है।

छाया–नाटकवाद :

प्रो0 ल्यूडर्स और टेअन कोनों ने यह मत प्रस्तुत किया है कि छाया नाटकों मे जो छाया चित्रों का प्रदर्शन किया जाता है, उससे नाटकों की उत्त्पत्ति हुई।

यूनानी प्रभाववाद–

प्रो0 वेबर और प्रो0 विन्डिश ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि भारतीय नाटकों का जन्म यूनानी प्रभाव से हुआ हैं संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त यवनिका शब्द इसका आधार है।

विविध वादों की समीक्षा :

संस्कृत नाटकों की उत्त्पत्ति के विषय में जो वाद प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें दो तथ्य विशेष अवशेष हैं–

1. नाटकीय तत्त्वों का होना।

2. नाटकों का प्रारम्भिक रूप।

नाटकीय तत्त्वों के प्राचीनतम रूप पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्य में नाटक के प्रमुख सभी तत्त्व मिल जाते हैं। अतएव भरत मुनि ने नाट्यवेद को 'चतुर्वेदांगसंभवम् कहा है। नाटक के लिये मुख्यतः 4 तत्त्वों की आवश्यकता है– 1. पाठ्य (कथावस्तु), 2. संगीत, अभिनय, 4. रस। ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में कथा वस्तु प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। सामवेद में संगीत तत्त्व प्रमुख है। यजुर्वेद के कर्मकाण्ड में वाचिक और हस्तादि संचालन के अभिनय पूर्णतया प्राप्य है। अथर्ववेद में कामः (9–2, 19–52), कामस्य इषुः (3–25), कामिनीमनोऽभिमुखीकरणम् (2–30), सपत्नीनाशनम्, (6–35), केवलः, पतिः (6–38) आदि सूक्तों में श्रृंगार रस प्रधान है तथा शत्रुनाशनम् (2–12, 18–34, 3–6, 4–3), सेनानिरीक्षणम् (4–31), शत्रु सेनासंमोहनम् (3–1), सेनासंयोजनम् (4–32) संग्रामजयः (6–99) आदि सूक्तों में वीर रस प्रमुख हैं। भारतीय नाटकों में श्रृंगार और वीर रस मुख्य हैं। इन रसों के लिये अथर्ववेद उत्तम आधार है। अथर्ववेद में करूण आदि रसों का भी वर्णन है। इस प्रकार नाटक के लिये आवश्यक चारों तत्त्व वेदों में उपलब्ध है। अतः भरतमुनि का कथन उपयुक्त प्रतीत होता है

कि भारतीय नाट्यशास्त्र 'चतुर्वेदांगसंभवम्' है। दूसरी विचारणीय बात है कि भारतीय नाटकों का प्रारंभ कब और कैसे हुआ? इसका प्रारम्भिक रूप में यज्ञादि के अवसरों पर धार्मिक अभिनयों में मिलता है। ऋग्वेद के संवादसूक्त इस दिशा में प्रथम अभिनयात्मक प्रयोग है। ये प्रयोग यज्ञों तक ही सीमित न रहकर धार्मिक क्रियाकलाप के अंग बन गये। प्रारम्भ में धार्मिक अभिनयों की लोक प्रियता के कारण इन्हें पर्व उत्सव आदि का भी अंग बनाया गया। इस क्रमिक विकास की प्रक्रिया में इन्द्रध्वज महोत्सव आदि को एक बड़ी समझना चाहिये। यही प्रक्रिया आगे बढने पर पर्वो, उत्सवों, रासलीला आदि में प्रयुक्त होने के कारण अधिक लोकप्रिय होती गई। इस प्रकार विवेचन से ज्ञात होता है कि पर्व वाद और रासलीलावाद नाटक के उद्भव के मूल कारण न होकर विकास की प्रक्रिया के अंग हैं। अतः इसी रूप में इनकी उपयोगिता स्वीकार्य है।

मैक्समूलर आदि ने ऋक् संवाद सूक्तवाद की जो स्थापना की है, उसमें संवाद पक्ष का पूर्णतया तथा अभिनय पक्ष का आंशिक समावेश हो जाता है। भरतमुनि ने नाट्य में संगीत, अभिनय और रस की जो आवश्यकता बताई है, वह इसमें न्यून है।

मृतात्म श्राद्धवाद भारतीय नाटकों की उत्पत्ति के लिये सर्वथा अग्राह्य है। यूनानी नाटक प्रायः दुःखान्त होते हैं, उनके लिये इस मत की उपयोगिता मानी जा सकती है। ऊरूभंग जैसे नाटक, जो तथाकथित दुःखान्त नाटक हैं, वे भी वस्तुतः पापी का नाश होने के कारण मूलतः सुखान्त ही हैं।

स्वांगवाद और पुत्तलिका नृत्यवाद को भारतीय नाटकों की उत्पत्ति का मूल कारण नहीं माना जा सकता है। वस्तुतः ये दोनों शिष्ट समाज में प्रचलित परिष्कृत नाटकों के विकृत रूप हैं। इन दोनों प्रकार के नाटक अनुकरणमूलक हैं और अर्धशिक्षित तथा अशिक्षित समाज में परिष्कृत नाटकों के विकृत रूप हैं।

छायानाटकवाद की कल्पना वस्तुतः अपुष्ट आधारों पर है। डॉ0 कीथ ने भी इस मत के साक्ष्यों को सर्वथा अविश्वसनीयता माना है।

यूनानी प्रभाववाद को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है। कुछ अंश में इसका कारण राजनीतिक भी है। डॉ0 कीथ ने इस विषय पर बहुत विस्तार से विचार किया है।[2] वे भी इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि भारतीय नाटकों पर यूनानी प्रभाव मानना असंगत है।

संस्कृत नाटकों का विकास :

पाश्चात्त्य विद्वान भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि नाटकों का प्रारम्भ सर्वप्रथम भारतवर्ष में हुआ। प्रो0 मैक्समूलर, पिशेल, लेवी, मैकडानल और कीथ आदि ने इस मन्तव्य को स्थिर किया है।

रामायण और महाभारत काल :

रामायण और भारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय नाटक प्रचलित हो चुके थे और नाटकों के विकास का क्रम प्रगति पर था। नाटकों में रस परिपाक पर भी पूरा ध्यान दिया जाता था। शैलूष और उनकी स्त्रियों के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि अभिनेता और अभिनेत्रियां भी थीं। हास्य रस वाले नाटक भी खेले जाते थे। वाल्मीकि रामायण के निम्नलिखित श्लोकों में नाटक, नट, नर्तक आदि का स्पष्ट उल्लेख है।

क. रसैः श्रृंगारकरूणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतादगायताम्।। (रामा0 1–4–9)

ख. नाराजके जनपदे प्रकृष्टनटर्तकाः।। (रामा0 2–67–15)

ग. वदयन्ति तथा शान्ति लासयन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यपरे प्राहुहीयानि विविधानि च।। (रामा0 2–69–4)

घ. शैलूषाश्च तथा स्त्रीभिर्यान्ति0। (रामा0 2–83–15)

इसी प्रकार महाभारत में भी सूत्रधार, नट, नर्तक आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

क. इत्यब्रवीत सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा। (महा0 1–51–15)

ख. नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिककारकाः। (महा0 2–12–36)

ग. आनर्ताश्ख तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः। (महा0 2–15–13)

महाभारत के विराट पर्व में रंगशाला का भी उल्लेख मिलता है। महाभारत के हरिवंश पर्व (91 से 97 अध्याय) में उल्लेख मिलता है कि वज्रनाम नामक राक्षस की नगरी में रामायण और कौबेररम्भाभिसार नामक नाटक खेले गये थे।

पाणिनि और पतंजलि :

पाणिनि का समय ईसा से 4र्थ शताब्दी पूर्व माना जाता है। पाणिनि ने अपने सूत्रों में दो नटसूत्रों अर्थात् नाट्यशास्त्रों का उल्लेख किया है। एक नाट्यशास्त्र के रचयिता शिलालिन थे और दूसरे के कृशाश्व।

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। –(अष्टा0 4–3–110)

कर्मन्दकृशाश्वादिनिः। –(अष्टा0 4–3–110)

इसमें ज्ञात होता है कि महर्षि पाणिनि से बहुत समय पूर्व नाट्यशास्त्र अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था। पाणिनि ने केवल अष्टाध्यायी की ही रचना नहीं की थी। अपितु जाम्बवतीजय (पाताल विजय) नामक नाटक भी लिखा था। जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है–

स्वस्ति पाणिनये तस्मैं येन रुद्रप्रसादतः।
आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम्।।

महर्षि पतंजलि (150 ई0पू0) ने अपने महाभाष्य (अष्टा0 3–2–111) में 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है।

ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति। – (महाभाष्य 3–2–111)

भरतमुनि :

भारतीय नाट्यशास्त्र के प्रधान आचार्य भरत मुनि माने जाते हैं। उनका नाट्य संबन्धी नाट्यशास्त्र नामक श्लोकबद्ध विशाल ग्रन्थ 36 अध्यायों में है। लगभग 700 पृष्ठ के इस विशाल ग्रन्थ में नाट्य संबन्धी सभी विषयों का विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन है।

इसका समय 200 ई0पू0 के लगभग माना जाता है। इससे ज्ञात होता है कि ई0पू0 तृतीय या चतुर्थ शताब्दी में भारतीय नाट्यकला अपनी उन्नत अवस्था में थी।

वात्स्यायन :

इसी प्रकार बौद्ध ग्रन्थों, जैनग्रन्थों और वात्स्यायन के काम सूत्र में भी नाटकों और नटों का उल्लेख मिलता है। वात्स्यायन (दूसरी शताब्दी ई0) ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि नट नागरिकों को नाटक दिखावें और दूसरी दिन नागरिक चाहें तो फिर नाटक देखें, नहीं तो नटों को विदा करें।

कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजां नियतं लभेरन्। यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा। (कामसूत्र 1–4–28 से 31)

कुशीलव शब्द से भी ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम अभिनय का कार्य राम के पुत्र कुश और लव ने किया था। अतः उनके अनुकरण और उनकी स्मृति में अभिनेता के लिये कुशीलव नाम चल पड़ा।

भारतीय नाटककारों में सबसे प्राचीन रचनायें महाकवि भास की प्राप्त होती है। तत्पश्चात् शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति आदि के नाटक है। इनका विवरण आगे दिया गया है।

महाकवि शूद्रक के नाटक :

शूद्रक का वास्तविक नाम शिमुक (या सिमुक) था। स्कन्दपुराण में स्पष्टतया इसका नाम शूद्रक उल्लिखित है। इसका नाम अनेक पुराणों में पृथक–पृथक मिलता है। इसका नाम वायुपुराण में सिन्धुक, मत्स्यपुराण में शिशुक, विष्णुपुराण में शिप्रक और भागवत में अन्ध्र, शूद्र, वृषल। ये आन्ध्रभृत्य राजा हैं। ये लोग कण्ववंशी राजाओं के भृत्य थे और बाद में कण्ववंशी सुशर्मा को मारकर राज्य छीन लिया और स्वयं शासक बन गये। ये सम्भवतः निम्न कोटि के ब्राह्मण थे और शिवभक्त थे अतः भागवतपुराण आदि इन्हें वर्गीय द्वेष (कृष्णभक्त न होने से) के कारण वृषल या शूद्र कहता है। गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था के आधार पर ये

आन्ध्रभृत्य सातवाहन वंशीय राजा अपने आपको वेदज्ञ एवं उच्चकोटि का ब्राह्मण घोषित करते हैं। शिमुक और शूद्रक वस्तुतः एक ही व्यक्ति के विभिन्न नाम हैं। अतएव पुराणों में उसे शिशुक, सिन्धुक, शिप्रक आदि कहा गया है।

लेखक ने स्वयं अपना नाम शूद्रक नहीं दिया है, अपितु परवर्ती लेखकों ने जातीय ऊँच–नीच की भावना को प्रदर्शित करने के लिये उसे 'शूद्रक' कहना अधिक पसन्द किया।

मृच्छकटिक की संक्षिप्त कथा :

महाकवि शूद्रक की प्रणीत इस नाटक में 10 अंक है। यह रूपक का एक भेद प्रकरण हैं। इससें एक निर्धन ब्राह्मण चारूदत्त का बसन्तसेना नामक नामक गणिका (वेश्या) से प्रेम वर्णन है। अन्त में दोनों का प्रेम सफल होता है और बसन्तसेना का चारूदत्त के विवाह होता है। साथ ही पालक नामक राजा को मार कर आर्यक के राजा होने का वर्णन है। अंकों के अनुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है–

अंक 1–

इस अंक का नाम अलंकार न्यास है। राजा का साला बसन्त सेना पर अनुरक्त है और उसे पकड़ने के लिये उनका अंधेरी रात में पीछा करता है। वह चारूदत्त के घर में घुस जाती है और अपने प्रेमी निर्धन चारूदत्त से वार्तालाप करती है तथा धूर्तो से बचने के लिये अपने गहने उतारकर उसके पास छोड़ देती है।

अंक 2–

इस अंक का नाम द्यूतकर संवाहक है। चारूदत्त का एक पुराना नौकर संवाहक जुए में ऋणी होकर बसन्तसेना के पास आता है। वह उसे धन देकर ऋण मुक्त करती है। वह संवाहक बौद्ध भिक्षुक बन जाता है। थोड़ी देर बाद बसन्तसेना का मत्त हाथी उस पर आक्रमण करता है और बसन्त सेना का नौकर उस नये भिक्षुक को बचाता है। चारूदत्त पुरस्कार रूप में उसे अपना उत्तरीय रेशमी चादर देता है।

अंक 3–

इस अंक का नाम सन्धिच्छेद सेंध लगाना है। बसन्तसेना की दागी मदनिका को मुक्त कराने के लिये शर्विलक चारूदत्त के मकान में सेंध लगाता है और बसन्तसेना के आभूषण चारूदत्त के घर से चुरा ले जाता है। चारूदत्त की पत्नी धूता उन आभूषकों के बदले अपनी रत्न माला देती है। विदूषक उसे बसन्तसेना के पास ले जाता है।

अंक 4–

इस अंक का नाम मदनिका शर्विलक है। शर्विलक बसन्तसेना के चुरायें आभूषण बसन्तसेना को देकर अपनी प्रेयसी मदनिका को मुक्त कराता है और उसे वधू बनाता है। शर्विलक को अपने मित्र आर्यक के बन्दी होने की सूचना मिलती है। वह मदनिका को छोड़कर आर्यक जो राजा होने वाला है को बचाने के लिये चल पड़ता है। विदूषक धूता की रत्नमाला बसन्तसेना क पास पहुंचता है। बसन्तसेना रात्रि में चारूदत्त से मिलने आने का सन्देश भेजती है।

अंक 5–

इस अंक का नाम दुर्दिन है। इसमें वर्षा का सुन्दर प्राकृतिक वर्णन है। बसन्त सेना चारूदत्त के घर ही वह रात्रि बिताती है।

अंक 6–

इस अंक का नाम प्रवहण विपर्यय गाड़ी बदलना है। अगले दिन प्रातः बसन्तसेना चारूदत्त की पत्नी को उसकी रत्नमाला लौटाना चाहती है, परन्तु वह उसे स्वीकार नहीं करती। चारूदत्त का पुत्र रोहसेन मिट्टी की गाड़ी लिये हुआ आता है और शिकायत करता है कि उसे सोने की गाड़ी चाहिये। बसन्तसेना उसकी गाड़ी पर अपने आभूषण रख देती हैं, जिससे वह सोने की गाड़ी खरीद सकें। बसन्तसेना को अपने प्रेमी चारूदत्त से मिलने उद्यान में जाना है। वह भूल से वहीं खड़ी शकार की गाड़ी पर सवार हो जाती है। आर्यक जेल से भागा हुआ है और शरण चाहता है वह बसन्तसेना के लिये खड़ी चारूदत्त की गाड़ी पर बैठ

जाता है। मार्ग में चन्दनक नामक एक सिपाही आर्यक को अभयदान देकर उसकी गाड़ी आगे जाने देता है।

अंक 7–

इस अंक का नाम आर्यकापहरण है। आर्यक उद्यान में चारूदत्त से मिलता है। चारूदत्त उसे अभयदान देता है और उसके बन्धन कटवा कर उसी गाड़ी से विदा करता है।

अंक 8–

इस अंक का नाम बसन्त सेना मोटन है। बसन्तसेना उद्यान में पहुंचती है। शकार उससे प्रणय निवेदन करता है। प्रणय अस्वीकार करने पर वह बसन्तसेना का गला घोटता है। उसे मरा समझ कर पत्तों से ढक देता है और चारूदत्त पर बसन्तसेना की हत्या का मुकदमा चलाने के लिये न्यायालय जाता है। बौद्ध भिक्षुक संवाहक वहां आता है। और बसन्तसेना को मृतप्राय देखकर उसकी सेवा करके उसे पुनरूज्जीवित करता है।

अंक 9–

इस अंक का नाम व्यवहार है। शकार चारूदत्त के विरूद्ध अभियोग चलाता है। चारूदत्त बुलाया जाता है। बालक रोहसेन को दिये आभूषण लौटाने के लिये विदूषक बसन्तसेना के पास जा रहा है। उसके पास से आभूषण निकलने से सिद्ध हो जाता है कि आभूषणों के लिये चारूदत्त ने बसन्तसेना की हत्या की है। चारूदत्त को मृत्यु दण्ड दिया जाता है।

अंक 10–

इस अंक का नाम संहार है। राजा पालक को मारकर आर्यक राजा हो जाता है। वह वध के लिये प्रस्तुत चारूदत्त को तुरन्त छुड़वाता है। चारूदत्त का बसन्तसेना से पुर्नमिलन होता है। बसन्तसेना चारूदत्त की बधू बरती है। चारूदत्त शंकार की क्षमाकर देता है। इस प्रकार चारूदत्त बसन्तसेना के विवाह के साथ कथा समाप्त होती है।

शूद्रक की नाट्यकला सम्बन्धी विशेषताएँ :

शूद्रक का मृच्छकटिक संस्कृत नाटक साहित्य में एक अद्भुत रचना है। इसमें जनजीवन का वास्तविक चित्रण मिलता है। यह वस्तुतः जनता का, जनता के लिये और जनता के द्वारा विरचित है। जनजीवन का जितना विस्तृत वास्तविक और व्यापक चित्रण मृच्छकटिक में मिलता है, उतना अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। इसकी प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1. यह रूपक के 10 भेदों में से प्रकरण रूपक है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में प्रकरण के लिये जो आवश्यक निर्देश दिये हैं उनका इसमें पालन किया गया है।
2. नाटक की कथावस्तु कल्पित है।
3. इसका नायक राजा आदि न होकर एक निर्धन ब्राह्मण है तथा नायिका रानी आदि न होकर एक विदुषी गणिका है।
4. इसमें मध्यमवर्गीय पात्रों की सामाजिक स्थिति का वास्तविक चित्रण है। इसमें विट, शकार, वेश्या, सार्थवाह, द्यूतकार आदि के दैनिक कार्यो का उल्लेख है।
5. इसमें नाटकीयता के साथ काव्य का भी समन्वय है।
6. इसमें प्रकरण के लिये निर्धारित 10 अंक हैं।
7. इसमें श्रृंगार संयोग श्रृंगार रस अंगी है और हास्य, करूण, भय, अद्भुत आदि अंग रस हैं।
8. इसमें 2 प्रणय कथायें और एक राजनीतिक कथा परस्पर संश्लिष्ट एवं अविभाज्य रूप से प्रस्तुत की गई है। 1. प्रणय कथा--चारूदत्त और बसन्तसेना, 2. प्रणय कथा–शर्विलक और मदनिका, 3. राजनीतिक कथा–राजा पालक का पतन और आर्यक का राज्यारूढ होना।
9. इसकी कथा आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी है।
10. कथावस्तु में प्रारम्भ से अन्त तक गतिशीलता है।

11. कथानक में प्रणय सम्बन्ध में प्रकृति विपर्यय। सामान्यतया पुरूष स्त्री पर रीझता है। इसमें वासवदत्ता स्त्री चारूदत्त पुरूष पर रीझती है।

12. कथानक के मध्य में प्रणय सम्बन्ध की परिपूर्णता। अंक 5 में दोनों का प्रणय सम्बन्ध पूर्ण हो जाता है। सामान्यतया नाटक के अन्त में इसकी पूर्णता होती है।

पात्र–

13. सभी कोटि के पात्र लिये गये हैं। निम्न श्रेणी के पात्रों की संख्या अधिक है, अतः नाटक अधिक यथार्थवादी है।

14. पात्र सभी वर्गो का तथा जीवन के सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं वे केवल राजापेक्षी नहीं है।

15. गौण पात्रों के चरित्र चित्रण में विशेष जागरूकता दृष्टिगोचर होती है।

16. पात्रों में अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। वे लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं है।

17. पात्र सार्वभौम है। वे किसी भी देश, काल और समाज में सरलता से प्राप्य हैं। उनके आचरण सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं।

18. चरित्र चित्रण में मानववादी दृष्टिकोण है। मानव सुलभ सद्गुणों और दुर्गुणों का स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

शैली–

19. शैली में सरलता, सरसता, स्पष्टता और अकृत्रिमता है।

20. सरल भाषा का प्रयोग किया गया है और कठिन समासों का अभाव है।

21. इसमें वैदभी रीति अपनाई गई है। कही–कहीं गौड़ी रीति का भी आश्रय लिया गया है।

22. भवभूति जैसी क्लिष्ट रचना का इसमें सर्वथा अभाव है।

23. वर्णन अपेक्षाकृत छोटे हैं। इसमें कल्पना की ऊँची उड़ानों का सर्वथा अभाव है तथापि वर्णनों में सहृदयता और रोचकता है।

कथोपकथन–

24. संवाद सजीव है।
25. लम्बे कथोपकथन का अभाव है।
26. उत्तर प्रत्युत्तर छोटे और स्वाभाविक है।
27. संवादों मे व्यंग्य और हास्य का सुन्दर पुट है।
28. संवादों में यथार्थता और स्वाभाविकता है।
29. स्वादों में प्रसंग के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया गया है।

अन्वितित्रय–

30. अन्य भारतीय नाटकों के तुल्य इसमें भी अन्वितित्रय का अभाव है।

उद्देश्य–

31. इसमें यथार्थ जीवन का मूल्यांकन किया गया है।
32. कर्म के आधार पर उच्चता और नीचता का सिद्धान्त माना गया है।
33. गुणों से मनुष्य का महत्व होता है, जाति या वर्ग आदि के आधार पर नहीं।
34. ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का समन्वय प्रदर्शित किया गया है।
35. चरित्र की उदात्तता पर बल दिया गया है।
36. राजनीति मे जनतान्त्रिक तत्वों के महत्व का प्रतिपादन है।
37. समाज के उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति और समाज में उनको उपयोगिता का प्रतिपादन है।

महाकवि कालिदास के नाटक :

महाकवि कालिदास नाटककार के रूप में विश्वविश्रुत है। उनका शाकुन्तल नाटक विश्व के सर्वसम्मुख नाटक के रूप में

विख्यात हैं। इस महाकवि के तीन नाटक प्राप्य हैं। कालक्रम की दृष्टि से तीनों नाटकों का क्रम इस प्रकार हैं– मालविकाग्निमित्र, 2. विक्रमोर्वशीय, 3. अभिज्ञानशाकुन्तल।

नाटकों की संक्षिप्त कथा एवं समीक्षा :

1. मालविकाग्निमित्र–

इसमें 5 अंकों में मालविका और अग्निमित्र के प्रणय और विवाह का वर्णन है। मालविका विदर्भराजपुत्र माधवसेन की बहिन है। दामादों द्वारा राज्य अपहृत होने पर अमात्य सुमति मालविका को सुरक्षित रखने के लिये छिपाकर लाता है। वन में डाकुओं क द्वारा सुमति की हत्या कर दी जाती है और मालविका राजा अग्निमित्र की महारानी धारिणी के भाई वीरसेन को प्राप्त हुई। तदनन्तर मालविका दासी के रूप में धारिणी के पास रहती है और राजा अग्निमित्र उस पर अनुरक्त हो जाता है।

अंकानुसार कथा इस प्रकार है–

अंक 1–

मालविका राजा अग्निमित्र की रानी धारिणी की सेविका है। धारिणी मालविका को संगीत नृत्य आदि सिखाने के लिये नाट्याचार्य गणदास को शिक्षक नियुक्त करती है। धारिणी प्रयत्न करती है कि राजा मालविका के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध न हो जाये, अतः वह उसे छिपाकर रखती है। एक चित्र में राजा मालविका को देख लेता है और उस पर मुग्ध हो जाता है। विदूषक मालविका की अग्निमित्र के सामने लानें की योजना बनाता है। तदनुसार नाट्याचार्य गणदास और हरदत्त में योग्यता विषयक विवाद होता है। निर्णय होता है कि भगवती कौशकी की अध्यक्षता में दोनों नाट्याचार्य अपनी शिष्याओं के द्वारा अभिनय कला प्रदर्शन करावें। धारिणी इस प्रदर्शन को रोकना चाहती है, परन्तु असफल रहती है।

अंक 2–

मालविका की नाट्यकला का प्रदर्शन होता है। गणदास विजयी घोषित होते हैं। राजा मालविका पर मंत्रमुग्ध होते हैं और

उसे विषबुझा हुआ काम बाण कहते हैं। विदूषक से उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने को कहते हैं।

अंक 3–

अग्निमित्र और मालविका का अनुराग प्रकट हो जाता है। छोटी रानी इरावती के आदेशानुसार राजा प्रमदवन जाते हैं। पैर में चोट के कारण रानी धारिणी अशोक की दोहद पूर्ति के लिये नहीं जाती है और वह अपने स्थान पर मालविका को एतदर्थ भेजती है। राजा और मालविका का मिलन होता है। इरावती आकर विघ्न डालती है और राजा को बुरा भला कहती है।

अंक 4–

क्रुद्ध होकर रानी धारिणी मालविका और उसकी सखी बकुलावलिका को जेल में डाल देती है। विदूषक सांप से काटे जाने का बहाना बनाकर धारिणी की सर्प मुद्रायुक्त अंगूठी प्राप्त करता है और उसे दिखाकर मालविका और उसकी सखी को मुक्त कराता है।

अंक 5–

इस अंक में विदर्भ देश से आई हुई दो सेविकाओं से मालविका का परिचय प्राप्त होता है। पूरा विवरण ज्ञात होने पर रानी धारिणी की अनुमति से राजा अग्निमित्र और मालविका का विवाह हो जाता है।

समीक्षा :

यह कालिदास की प्रथम कृति है। उनकी प्रतिभा का इसमें पूर्ण प्रस्फुरण नहीं हुआ है। फिर भी कवित्व, नाटकीय कौशल, घटना संयोजन, संवाद और चरित्र चित्रण में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। इसमें सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक वर्णन, अन्तर्द्वन्द्व और अन्तःप्रकृति के विश्लेषण का अभाव है, तथापि बाह्य परिस्थितियों का अच्छा चित्रण है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ है–

1. नाटकीय तत्व गतिशीलता की विशिष्ट योजना
2. प्रत्येक घटना की सार्थकता

3. अग्निमित्र और मालविका के प्रणय व्यापार पर सभी घटनाओं का केन्द्रित होना
4. कथा संयोजन में अनावश्यक विवरणों का परित्याग
5. श्रृंगार का अंगी रस होना।
6. विदूषक के कारण हास्य रस का समावेश
7. विदूषक को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देना।
8. संवादों में संक्षिप्तता, रोचकता, प्रभावोत्पादकता और विनोद प्रियता
9. भाषा प्रसाद और माधुर्य गुण युक्त है।
10. यह नाटक कोटि का रूपक है। इसमें 5 अंक है। 96 श्लोक है। वस्तु विन्यास और वर्ण्य विषय की दृष्टि से रत्नावली के तुल्य नाटिका की कोटि में आना चाहिये, परन्तु 5 अंक के कारण नाटक माना जाता है। नायक धीरोदात्त माना जाता है, परन्तु वह धीरललित कोटि का है।
11. इसके पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति है। कुछ ऐतिहासिक घटनायें केवल इसी नाटक में प्राप्त होती है। यथा माधवसेन और यज्ञसेन की शत्रुता, अग्निमित्र की सैनिक सहातया से माधवसेन की कारागृह से मुक्ति और राज्य प्राप्ति। अग्निमित्र शुंगवंशी राजा पुष्यमित्र का पुत्र है।
12. भाषा सौन्दर्य और भावगाम्भीर्य की दृष्टि से यह नाटक शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय से न्यून है, परन्तु अभिनेयता की दृष्टि से बहुत सुन्दर है।

2. विक्रमोर्वशीय–

यह कालिदास का द्वितीय नाटक है। यह 5 अंकों में त्रोटक नामक उपरूपक है। इसमें राजा पुरूरवा ओर उर्वशी नामक अप्सरा की प्रणय कथा वर्णित है।

अंक 1–

राजा पुरूरवा केशी राक्षस से संत्रस्त उर्वशी का उद्धार करता है। उर्वशी के सौन्दर्य और राजा के पराक्रम के कारण वे दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हैं।

अंक 2–

उर्वशी को राजा के प्रेम का पता लगता है। उर्वशी का एक प्रेम पत्र विदूषक की त्रुटि से देवी औशीनरी को मिल जाता है और वह राजा को डाँटती है। राजा अनुनय करके उसका क्रोध शान्त करता है।

अंक 3–

भरतमुनि द्वारा निर्देशित एक नाटक में उर्वशी पुरूषोत्तम विष्णु के नाम के स्थान पर पुरूरवा का नाम ले लेती है। इस पर क्रुद्ध होकर भारतमुनि ने शाप दिय कि पुत्र दर्शन तक वह मर्त्यलोक में रहें। उर्वशी राजा के पास रहती है।

अंक 4–

राजा एक विद्याधर कुमारी को देखकर मुग्ध होता है। इस पर क्रुद्ध होकर उर्वशी कार्तिकेय के गन्धमादन उपवन में चली जाती है। कार्तिकेय का नियम था कि जो स्त्री इस उपवन में आयेगी, वह लता हो जायेगी। उर्वशी लता के रूप में परिवर्तित हो जाती है। राजा अत्यन्त शोक करता है। आकाशवाणी होती है कि संगमनीय मणि को लेकर लतारूपी उर्वशी का आलिंगन करने पर वह अपने पूर्व रूप को प्राप्त हो जायेगी। ऐसा करके राजा लता को पुनः उर्वशी के रूप में परिवर्तित कर लेता है।

अंक 5–

एक गिद्ध उस मणि को चुरा लेता है। एक अज्ञात व्यक्ति के बाण से वह गिद्ध मारा जाता है। उस बाण पर पुरूरवा का पुत्र आयुष लिख है। उर्वशी ने अपने पुत्र को जानबूझकर च्यवन ऋषि के आश्रम में छिपा रखा था। पुत्र दश्नन होते ही उर्वशी को पुनः स्वर्ग जाने के आदेश से वह बहुत दुःखित है। इसी समय नारद इन्द्रलोक से आते हैं और सूचित करते हैं कि इन्द्र को युद्ध में पुरूरवा की सहायता अपेक्षित है, अतः इन्द्र ने कृपा की है कि उर्वशी अब सदा पुरूरवा के पास ही रहेगी।

समीक्षा :

पुरूरवा और उर्वशी की कथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण और महाभारत आदि में मिलती है।

कालिदास ने वैदिक आख्यान को नवीन रूप दिया है। इसमें कई नई बातें जोड़ी हैं। जैसे– भरतमुनि का उर्वशी को मर्त्यलोक में जाने का शाप, कार्तिकेय का नियम कि उसके उपवन में आने वाली स्त्री लता बन जायेगी। उर्वशी का लता बनना और पुरूरवा का विलाप, सारा पंचम अंक नवीन है।

वैदिक आख्यान का अभिप्राय है कि पुरूरवस् (मेघ, पुरू, अधिक, रवस्–शब्द करने वाला) और उर्वशी (बिजली, उरू–अधिक, अशी–व्याप्त रहने वाली) के संयोग से आयुष् (अन्न) का जन्म होता है। निरूक्त (17–46) में पुरूरवा का अर्थ मेघ और यजुर्वेद (15–19) तथा निरूक्त (5–13) में उर्वशी की व्याख्या विद्युत है। इस प्रकार पुरूरवा और उर्वशी मेघ और विद्युत हैं। ये एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते, यही इनका श्रृंगारिक पक्ष है।

विक्रमोर्वशीय की मुख्य विशेषतायें ये है–

1. इसमें कवि की प्रतिभा का पर्याप्त विकास है।
2. मालविकाग्निमित्र की अपेक्षा इसमें पात्रों की अन्तर्दशा का सुन्दर चित्रण है।
3. दिव्य उर्वशी में मानवीय भावों का सुन्दर चित्रण है।
4. भाषा और भावों में कवि की प्रतिभा विकासोन्मुख है। भाषा में सरलता के साथ प्रांजलता है। प्रसाद के साथ माधुर्य है। भावों में अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक दशा का सुन्दर विश्लेषण है।
5. चतुर्थ अंक में राजा का विलाप अपभ्रंश छंदों में है। कवित्व की दृष्टि से ये पद्य अत्यन्त सुन्दर हैं, पर अपभ्रंश पद्यों की प्रधिकता खटकती है।
6. गतिशीलता में यह मालविकाग्निमित्र से न्यून है, परन्तु विचार वैशारद्य में यह बहुत आगे हैं।
7. कवि की वर्णन शक्ति प्रबुद्ध रूप में है।
8. अंक 2 और 3 नाटक की प्रगति में बाधक है।
9. इसमें श्रृंगार के दोनों पक्षों–संभोग और विप्रलम्भ का सुन्दर परिपाक हुआ है।

10. छोटे वाक्य, मुहावरेदार प्रयोग, सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण, कथानक का सौन्दर्य, करूणरस का प्रवाह, हास्यरस की पुट तथा काव्य सुषमा नाटक को अत्यन्त मनोहर बनाती हैं।

3. अभिज्ञानशाकुन्तल–

शाकुन्तल संस्कृत साहित्य ही नहीं अपितु विश्व साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसमें 7 अंकों में दुष्यन्त और शाकुन्तला के प्रेम, वियोग और पुनर्मिलन का वर्णन है।

अंक 1–

मृग का पीछा करते हुए राजा दुष्यन्त कण्व ऋषि के आश्रम में प्रवेश करके शकुन्तला का दर्शन करता है। भ्रमर से शकुन्तला की रक्षा करता है। राजा शकुन्तला पर अनुरक्त होता है। शकुन्तला का परिचय प्राप्त होता है कि वह विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है तथा कण्ड द्वारा पालित पोषित है। शकुन्तला राजा के गुणों पर मुग्ध है।

अंक 2–

राजा शकुन्तला प अपने प्रेम की सूचना विदूषक को देता है।

अंक 3–

शकुन्तला दुष्यन्त के प्रति आसक्ति के कारण अस्वस्थ्य है। वह एक प्रेम पत्र लिखती है। राजा प्रकट होकर उसके गन्धर्व विवाह करता है।

अंक 4–

हस्तिनापुर लौटने से पूर्व राजा शकुन्तला को अपनी अँगूठी देता है और कहता है कि जिसमें जितने अक्षर हैं, उतने दिन से पूर्व मैं तुम्हें अन्तःपुर में बुला लूँगा। अतिथ्य न करने पर दुर्वासा ऋषि शकुन्तला को शाप देते हैं कि अवसर आने पर तुम्हारा पति तुम्हें नहीं पहचानेगा। अनसूया की प्रार्थना पर दुर्वासा आश्वासन देते हैं कि अँगूठी दिखाने पर शाप निवृत्त होगा। कण्ड ऋषि सोमतीर्थ की यात्रा से लौटते हैं उन्हें आकाशवाणी से शकुन्तला और दुष्यन्त के गान्धर्व विवाह और शकुन्तला के गर्भवती होने का

समाचार मिलता है। ऋषि दो शिष्यों के साथ शकुन्तला को राजा के पास भेजते हैं। शकुन्तला वृक्षों, लताओं, पशु–पक्षियों, मृग–शिशु, सखियों और पिता से विदाई लेकर हस्तिनापुर के लिए चल पड़ती है।

अंक 5–

शकुन्तला राजा दुष्यन्त के राजद्वार में पहुंचती है और दुर्वासा के शाप के कारण शकुन्तला को नहीं पहचानता है। रोती हुई शकुन्तला को एक अप्सरा (उसकी माता मेनका) उठा ले जाती है।

अंक 6–

शचीतीर्थ में शकुन्तला की गिरी हुई अँगूठी एक मछुए को एक मछली के पेट में मिली। उस अंगूठी के मिलते ही राजा को शकुन्तला के विवाह की सारी बातें स्मरण हो आई। राजा दिन रात दुःखित रहने लगा। सभी प्रसन्नता के आयोजन समाप्त कर दिये गये। इन्द्र का सारथि मातलि आकर राजा को सन्देश सुनाता है कि इन्द्र ने राक्षसों के वधार्थ आपको बुलाया है। राजा स्वर्ग के लिये प्रस्थान करता है।

अंक 7–

राजा दैत्यों पर विजय प्राप्त करता है। स्वर्ग से लौटते समय भारीच ऋषि के आश्रम में शकुन्तला और पुत्र भारत से राजा का मिलन होता है। भारीच ऋषि दोनों को आशीर्वाद देते हैं। इन्द्र के रथ पर दोनों हस्तिनापुर पहुंचते हैं।

कालिदास की नाट्यकला :

घटना संयोजन में सौष्ठव :

कालिदास ने शाकुन्तल के घटना संयोजन में असाधारण कुशलता प्रदर्शित की है। घटनाओं का संयोजन इस प्रकार किया गया है कि उनमें पूर्णरूप से स्वाभाविकता ज्ञात होती है। प्रत्येक घटना सार्थक है, अतः कथानक के विकास में पूर्ण योग देती है। घटनायें बहुत विचारपूर्वक यथास्थान रखी गई हैं, अतः नाटक की

गति स्वाभाविक और अविच्छिन्न है। जैसे– भ्रमर से पीड़ित शकुन्तला की रक्षा के लिये राजा का प्रवेश, शकुन्तला का राजा को देखकर उस पर मुग्ध होना, क्षत्रिय कन्या जानकर राजा का शकुन्तला से विवाह का निर्णय, गान्धर्व–विवाह, दुर्वासा का शाप, शाप के कारण शकुन्तला का प्रत्याख्यान, स्वर्ग से लौटते समय मारीच ऋषि के आश्रम में शकुन्तला और पुत्र से मिलन। सभी बातें सुसंबद्ध हो गई है।

घटनाओं की सार्थकता :

शाकुन्तल की प्रत्येक घटना सार्थक है और किसी विशेष उद्देश्य से रखी गयी जैसे– अंक 1 में तपस्वियों का आशीर्वाद कि चक्रवर्ती पुत्र होगा। फलस्वरूप अंक 7 में चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति। ऋषि के सोमतीर्थ जाने से शकुन्तला की विपत्ति का दूर होना और पुनः पति मिलन। दुर्वासा के शाप से शकुन्तला को भूलना, अँगूठी खोने से अंक 5 में पहचान के समय कठिनाई, अँगूठी मिलने से शाप की समाप्ति, स्वर्ग से लौटते समय देवों के आशीर्वाद से अनायास पुत्र और पत्नी से मिलन।

वर्णनों में स्वाभाविकता :

कालिदास के प्रत्येक वर्णन स्वाभाविक हैं। वे आंखों के सामने घटना को मूर्तवत् चित्रित कर देते हैं। जैसे– मृग के दौड़ने का वर्णन (अंक 1–7), रथ की तीव्र गति का वर्णन (1–8–9), मृगया के गुणों का वर्णन (2–5), अंक 4 में शकुन्तला की विदाई का वर्णन–लता, म

मृशावक, सखियों और पिता से विदाई लेना, अंक 5 में राजा और शांगरव का विवाद, शकुन्तला का प्रत्याख्यान, अंक 6 में शोकाकुल राजा का वर्णन, अंक 7 में बालक भरत की क्रीड़ा।

रचना कौशल :

महाभारत के एक साधारण और नीरस कथानक को अत्यन्त सरस और मनोरम बना देना कालिदास की ही उर्वर कल्पना शक्ति का प्रभाव है। मूलकथा में परिवर्तन और उनका महत्त्व वर्णन किया जा चुका है।

वर्णनों और घटनाओं की ध्वन्यात्मकता :

कालिदास के काव्यों में ध्वनि या व्यंजना का प्रमुख स्थान है। उनके वर्णन और घटनाएँ संकेतात्मक होती है। वे भावी घटनाओं की ओर संकेत करती हैं। प्रस्तावना में सूत्रधार का कथन–दिवसाः परिणामरमणीयाः (1–3) सूचित करता है कि नाटक का अन्त सुखद होगा। नटी का कथन–'ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः (1–4) संकेत करता है कि भ्रमर तुल्य राजा शकुन्तला से प्रेम करेगा। सूत्रधार का कथन–अस्मिन् क्षणे विस्मतं खलु मया (1 वाक्य 12) सूचित करता है कि नाटक में भूलना महत्वपूर्ण घटना है। राजा शकुन्तला को भूलता है, शकुन्तला भूल से अंगूठी खो देती है, शकुन्तला दुर्वासा का आतिथ्य भूल जाती है, अतः शाप ग्रस्त होती है। प्रभात वर्णन में यात्येकतोऽस्तशिखरं0 (4–2) संकेत करता है कि सुख–दुख का क्रम अनिवार्य है, अतः शकुन्तला पर विपत्ति आयेगी और फिर वह दूर हो जायेगी। इन्द्र द्वारा दुष्यन्त का विशेष सत्कार संकेत करता है कि दुष्यन्त की अभिलाषा शीघ्र पूर्ण होगी।

चरित्र चित्रण में वैयक्तिकता :

कालिदास चरित्र चित्रण में अत्यन्त पटु हैं। उनके प्रत्येक पात्र में अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। प्रत्येक पात्र की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं, उनका विकास बहुत व्यवस्थित रूप से हुआ है। शाकुन्तल के पात्र समाज के विभिन्न वर्गो के प्रतिनिधि हैं। उनका सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक चित्रण उत्तम रूप से हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास का मानव प्रवृत्ति–निरीक्षण कितना गम्भीर था। राजा दुष्यन्त धीरोदात्त नायक है। उसे अपने कर्तव्य पालन का सदा ध्यान रहता है। वह शाप के प्रभाव के कारण ही शकुन्तला का प्रत्याख्यान करता है और उसकी स्मृति आने पर उसे पुनः स्वीकार करता है। तीन ऋषियों का वर्णन किया है और तीनों में अन्तर किया है– 1. कण्व–अत्यन्त महर्षि है। वे शकुन्तला के धर्मपिता हैं। 2. मारीचि–वीतराग ऋषि हैं। 3. दुर्वासा–अत्यन्त क्रोधी ऋषि हैं। दो ऋषि शिष्य हैं। 1. शांगरव–अभिमानी, क्रोधी और अधिक बोलने वाला है। 2. शारद्वत–विनीत, शान्त, मितभाषी हैं। तीन सखियाँ हैं। 1.

शकुन्तला--लज्जाशील, मितभाषी, सरल हृदय है। 2. अनसूया–शान्त, गम्भीर, विवेशील है। 3. प्रियंवदा–हास्यप्रिय, वाक्पटु और मधुरभाषी है। अन्य नाटकों से शाकुन्तल में दो बातों में कालिदास ने अन्तर किया है–1.उपनायिका का अभाव, 2. विदूषक को अनावश्यक महत्त्व न देना।

पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग :

कालिदास ने पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग किया है। प्रत्येक पात्र अपनी स्थिति के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग करता है। प्रियंवदा और अनुसूया शकुन्तला से सखीजनोचित हास–परिहास करती है। कण्ड ऋषिजनोचित ही शकुन्तला का अभिनन्दन करते हैं कि भाग्य से यजमान की आहुति अग्नि में ही पड़ी है। सुशिष्य को दी गई विद्या के तुल्य तू अशोचनीय हो गई है। सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता (4 वा0 38)। पुरोहित दार्शनिक भाषा का प्रयोग करता है–कुत इदमुच्यत इति चेत्0 (5 वा0 102)। विदूषक सदा खाने की ही बात करता है। क्या लड्डू खाना है?

किं मोदकखादिकायाम् (2वा0 19)।

महाकवि हर्ष की नाट्य रचनायें :

महाकवि की तीन नाटक प्रसिद्ध हैं– 1. प्रियदर्शिका 2. नागानन्द 3. रत्नावली। इसमें रत्नावली अत्यधिक लोकप्रिय नाटक है।

रत्नावली :

यह चार अंकों की नाटिका है। इसमें राजा उदयन और सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली (सागरिका) के प्रणय और परिणाम का वर्णन है।

अंक 1–

राजा उदयन के महल में समुद्री दुर्घटना से बची हुई सिंहलराज की पुत्र रत्नावली वासवदत्ता के पास पहुंचती है और सागरिका नाम से उसकी दासी बनकर रहती है। उसके सौन्दर्य

पर राजा आसक्त न हो जाये। अतः वह सागरिका को राजा से दूर रखती है, किन्तु मदन महोत्सव में दोनों का साक्षात्कार हो जाता है तथा दोनों का पूर्वराग प्रारम्भ होता है।

अंक 2–

सागरिका अपनी सखी सुसंगता को उदयन विषयक अपना प्रेम बताती है। एक मैना यह सब समाचार सुन लेती है। राजा का पालतू बन्दर उधर आता है और मैना का पिंजड़ा खोल देता है। मैना उड़ जाती है। राजा और विदूषक उस कदलीवन में आते हैं। मैना से उन्हें सारा समाचार ज्ञात होता है। सुसंगता के प्रयत्न से उदयन और सागरिका मिलते हैं। वासवदत्ता वहां आकर क्रुद्ध होती है तथा राजा के मनाने पर भी तमक कर चली जाती है।

अंक 3–

सुसंगता और विदूषक ने उदयन और सागरिका को माधवीलता मण्डप में मिलाने का आयोजन किया। वासदत्ता को षड्यन्त्र का पता चल गया और वह पहले ही वहां पहुंचती है। राजा उसे सागरिका नाम से संबोधित करता है। रानी क्रुद्ध होकर चली जाती है। सारी बातें जानकर सागरिका लज्जावश फांसी लगाने का प्रयत्न करती है, किन्तु राजा उसे बचा लेता है। दोनों प्रेंमालाप प्रारम्भ करते हैं। इसी बीच पुनः वासवदत्ता आ जाती है और क्रुद्ध हो सागरिका को कैद में डाल देती है तथा उसे उज्जैन भेज देने की अफवाह उड़ा देती है।

अंक 4–

एक जादूगर अपना खेल दिखाता है महल में आग लगती है। वासवदत्त सागरिका को बचाने के लिये राजा से प्रार्थना करती है। राजा उसे बचा लाता है। इसी समय सिंहल राजा के मंत्री और कंचुकी आते हैं और वे रत्नावली (सागरिका) को पहचान लेते हैं। वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि वह उसके मामा की पुत्री है। वह दोनों का प्रेम विवाह कराती है।

हर्ष की नाट्यकला एवं शैली :

नाट्यकला–

हर्ष एक नाट्यकला प्रवीण नाटककार हैं। उनकी नाटिकाओं में वस्तु विन्यास अत्यन्त प्रभावशाली तथा योजनाबद्ध है। नाटिकाओं में गतिशीलता है और काय व्यापार में धारावाहिकता। इनमें कल्पना की ऊँची उड़ान है। यद्यपि प्रियदर्शिका में कवि का कल्पना पक्ष उतना उभर कर नहीं आया है, तथापि रत्नावली में उसकी क्षतिपूर्ति हो गई है। और कवि कल्पना प्रौढ़ रूप में प्राप्त होती है। प्रियदर्शिका में 'गर्भनाटक' मौलिक कल्पना है तो रत्नावली में ऐन्द्रजालिक का दृश्य मधुर कल्पना है। रत्नावली में वेश–भूषा परिवर्तन भी नई कल्पना है। इसके द्वारा सागरिका वासवदत्ता के रूप में प्रस्तुत होने में समर्थ होती है।

प्रियदर्शिका और रत्नावली :

प्रियदर्शिका और रत्नावली दोनों नाटिकाओं में राजा अपनी प्रेयसी पर कुछ उपकार करता है। प्रियदर्शिका में भ्रमर बाधा से रक्षा करता है और विष का प्रभाव उतारता है तो रत्नावली में फांसी लगाकर मरने से बचाता है और कृत्रिम अग्निज्वाला से बचाता है। दोनों नाटिकाओं में कई दृष्टि से अन्य साम्य भी हैं–

1. दोनों की कथावस्तु प्रसिद्ध उदयन वासवदत्ता कथानक पर आश्रित है।
2. दोनों के प्रणय व्यापारों में साम्य है। यथा– नायिका का नायक पर मुग्ध होना, गुप्तरूप से नायक नायिका को मिलाने का प्रयत्न, षड्यन्त्र का भेद खुलना, नायिकाओं का बन्दी बनाया जाना, रानी वासवत्ता द्वारा पाणिग्रहण कराना।
3. कथा साम्य नायिकाओं का राजकुमारी होना, किसी विपत्ति से ग्रस्त होना, संयोगवश वासवदत्ता की शरण में आना, दासी बनकर रहना, वासवदत्ता से किसी प्रकार संबद्ध होना, नाटक के अन्त में वास्तविकता का पता चलना, उपनायिकाओं की पहचान, वासवदत्ता का पश्चात्ताप, ईर्ष्यालु वासवदत्ता में भगिनी प्रेम का आविर्भाव, स्वयं वासवदत्ता द्वारा उनका पाणिग्रहण कराना।

4. दोनों में श्रृंगार रस मुख्य है।
5. दोनों का नायक धीरललित है।
6. दोनों मे नायक भ्रमर वृत्ति है। वह पुरानी प्रेमिका का भुला सा देता है। इसके लिये अपमान सहने को भी प्रस्तुत रहता है।
7. नायिकाएँ पिता द्वारा उदयन के लिये वाग्दान की गई परन्तु नायक को इसका ज्ञान नहीं है।
8. नायिकाएँ अपने सौन्दर्य से नायक को जीतती हैं। नायक छिपकर उनसे प्रेमालाप करता है।
9. प्रेमियों के मिलाने में विदूषक का सहयोगी होना और जेल जाना।
10. दोनों में मौलिकता कम है, लालित्य अधिक है।
11. दोनों में श्रृंगार रस के उपयुक्त वातावरण बनाया गया है।
12. नाट्यकला के विकास की दृष्टि से प्रियदर्शिता षोडशी है तो रत्नावली प्रौढा।

शास्त्रीय महत्त्व :

तीनों नाटकों में रत्नावली शास्त्रीय दृष्टि से अनुपम रत्न है। इसकी गरिमा पर दशरूपककार धनंजय मंत्रमुग्ध हैं और साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ भी उसके आकर्षण से बच नहीं सके हैं। इसमें अर्थ प्रकृतियों, अवस्थाओं, सन्धियों और सन्ध्यांगों का इतना सांगोपांग निरूपण है कि प्रत्येक नाटकीय तत्त्व का उदाहरण इसमें ढूढा जा सकता है। यह कल्पना निराधार है कि नाटकीय तत्त्वों की आख्या के लिये ही इसका प्रणयन हुआ था। इसका नाटकीय गौरव हर्ष की नाट्य कुशलता का परिचायक है। हर्ष यद्यपि कथवस्तु और घटना संयोजन के लिये भास और कालिदास का ऋणी है, तथापि उसकी अपनी मौलिकता है, जिसका अपलाप नहीं किया जा सकता है। उसके नाटकों में सफल अभिनेयता है। ये रंगमंच की दृष्टि से पूर्णतया सफल है।

महाकवि भट्टनारायण की नाट्यरचना :

वेणीसंहार की संक्षिप्त कथा :

इस नाटक में 6 अंक हैं। इसमें भीम के द्वारा द्रोपदी के वेणी संहार (वेणी को संवारने या बांधने) का वर्णन है। अतः नाटक का नाम वेणी संहार पड़ा । इसमें द्रोपदी के अपमान का बदला के लिये भीम प्रतिज्ञा करता है कि वह दुःशासन की छाती का खून पीयेगा और दुर्योधन की जांघ तोड़ेगा। दोनों प्रतिज्ञाएँ पूरी होने पर वह द्रोपदी की वेणी बांधता है। अंकानुसार कथा इस प्रकार है–

अंक 1–

भीमसेन की प्रतिज्ञा कि दुःशासन की छाती का खून पीऊँगा और दुर्योधन की जाँघ तोड़कर रक्तरंजित हाथ से द्रोपदी के बाल बांधूगा। कृष्ण संधि के प्रयत्न में असफल होकर लौटते हैं। दुर्योधन ने कृष्ण को बन्दी बनाने का प्रयत्न किया था, परन्तु विश्वरूप दर्शन से वे उसे चंगुल से बच सके।

अंक 2–

अभिमन्यु की हत्या, दुर्योधन की पत्नी भानुमती का स्वप्न वृत्तान्त, स्वप्न में नकुल द्वारा सौ सर्पो का वध और भानुमती का नकुल (न्यौले) पर आकृष्ट होना नकुल (पाण्डव) पर भानुमती का आकृष्ट होना समझ कर दुर्योधन का भानुमती के वधार्थ उद्यत होना, स्वप्न जानकर शान्ति, भानुमती के साथ दुर्योधन की काम क्रीड़ा का वर्णन, दुर्योधन को अत्यन्त कामुक चित्रित किया जाना, अर्जुन की जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा।

अंक 3–

कर्ण द्वारा भीम के पुत्र घटोत्कच का वध, धृष्टद्युम्न के द्वारा द्रोण का वध, कृपाचार्य का अश्वत्थामा को सेनापति बनाने का प्रस्ताव, दुर्योधन का कर्ण को सेनापति बनाना, कर्ण और अश्वत्थामा का वाग्युद्ध, अश्वत्थामा का शस्त्र–त्याग, भीम द्वारा दुःशासन की छाती का खून पीने की सूचना।

अंक 4–

दुःशासन की रक्षा करते समय दुर्योधन का घायल होना, अर्जुन के द्वारा कर्ण के पुत्र वृषसेन का वध, कर्ण का दुःखित होना।

अंक 5–

अर्जुन द्वारा कर्ण का वध, दुर्योधन का युद्धार्थ उद्यत होना, धृतराष्ट्र के अभिवादनार्थ भीम और अर्जुन का आगमन, वहीं पर भीम और दुर्योधन का वाग्युद्ध, अश्वत्थामा का आगमन, दुर्योधन के व्यवहार से असन्तुष्ट एवं रूष्ट अश्वत्थामा का प्रस्थान।

अंक 6–

शल्य की मृत्यु, भीम के द्वारा वध से बचने के लिये दुर्योधन का सरोवर में छिपना, सहदेव के प्रयत्न से दुर्योधन का पता लगाना, भीम और दुर्योधन का गदा युद्ध, दुर्योधन के मित्र चार्वाक नामक राक्षस का युधिष्ठिर को धोखा देना और बताना कि गदायुद्ध में भीम की मृत्यु और अर्जुन से गदा युद्ध चालू है, युधिष्ठिर और द्रोपदी का चिता में जलने के लिये तैयार होना, दुर्योधन का मारकर भीम का आगमन और द्रोपदी का वेणी बन्धन।

भट्टनारायण की नाट्यकला :

भारतीय नाटककारों में नाटककार के रूप में भट्टनारायण का अपूर्व सीन है। भट्टनारायण ही वे नाटककार हैं, जिन्होंने नाट्यशास्त्र की नियमावली का विधिवत् पालन किया है, अतएव नाट्य–शास्त्राचार्यो ने भट्ठनारायण को बहुत महत्त्व दिया है और पद–पद पर वेणीसंहार के उद्धरण दिये हैं। नाट्यशास्त्रीय नियमों को ध्यान में रखते हुए नाटक में उनका जितना सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। अर्थप्रकृतियाँ, अवस्थाओं और सन्धियों का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है। कथानक सुन्दर और रोचक है। महाभारत की मूलकथा को कवि ने आवश्यक परिवर्तन करके नाटकोपयोगी बनाया है। कथा संयोजन में सौष्ठव कवि की प्रतिभा पर निर्भर है। संवाद रोचक हैं, किन्तु कुछ सिलों प आवश्यकता से अधिक लम्बे होने के कारण नीरस

हो गये हैं। द्वितीय अंक में प्रकृति वर्णन के कुछ सुन्दर प्रसंग हैं। कथानक यद्यपि रोचक है, तथापि घटनाचक्र बहुत सीमित है, अतः नाटक के लिये उपयुक्त गति या प्रवाह का अभाव है। भट्टनारायण ने नाटकीय नियमों की पूर्ति के लिये वीर रस के नाटक में भी श्रृंगार रस की उद्भावना की है। युद्ध काल में दुर्योधन भानुमती क काम क्रीड़ा भले ही श्रृंगार रस का सुयोग प्रदान करें। किन्तु इससे रस भंग दोष उत्पन्न होता है। पात्रों का चरित्र–चित्रण सुन्दर हुआ है। भीम आदर्श वीर के रूप में प्रस्तुत हैं। वह प्रण रक्षा के लिये प्राण गँवाने को तैयार रहता है। उसके चरित्र में कहीं कोई शिथिलता या न्यूनता नहीं है। युधिष्ठिर बहुत सीधे भले आदमी हैं जो जैसा कहता है वे वैसा ही मानने को तैयार हो जाते हैं। दुर्योधन कूटनीति और राजनीति का चतुरा खिलाड़ी है। वह पराजय पर पराजय होने पर भी हिम्मत नहीं हारता है। मित्रों का आदर करता है। उनकी निन्दा नहीं सुन सकता। विलासिता उसके जीवन की कमजोरी है। अश्वत्थामा वीर योद्धा है, किन्तु उसे अवसर का विवेक नहीं है। बार–बार हथियार छोड़ना और उठाना, उसकी बुद्धि की अस्थिरता का सूचक है। कर्ण शूर, वीर, महारथी है। वह स्वाभिमानी है। उसमें नाममात्र को भी हीनता की भावना नहीं है। वह मित्र के लिये सर्वत्र अर्पण करता है।

कवि घटना संयोजन में अत्यन्त दक्ष है। उसने सभी अनावश्यक प्रसंगों को काट दिया। प्रारम्भ से अन्त तक सभी अंक सम्बद्ध हैं। 'संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू0 (अंक 1–15) और अंक 6 में दुर्योधन का उरूभंग संबद्ध हैं। इसी प्रकार 'दुःशासनस्य रूधिरं न पिबाम्युरस्तः (अंक 1–15) 'क्षेबो दुःशासनासृजा0 (अंक 5–28) से साक्षात् संबद्ध है। अंक 3 में कर्ण अश्वत्थामा विवाद पंचम अंक के 'ममन्यन्तं प्रतीक्षस्व कः कर्णः कः सुयोधनः (5–39) से संबद्ध है। 'भग्नं भीमेन भवतो0' (2–24) में 'पताकास्थानक' द्रष्टव्य है।

प्रत्येक वर्णन सार्थक है। वर्णनों में स्वाभाविकता है। प्रभात वर्णन (अंक 2), युद्ध वर्णन (अंक 2 और 4), युधिष्ठिर और द्रोपदी का जलने के लिये उद्यत होना (अंक 6), ये वर्णन स्वाभाविक,

मनोहर और नाट्यकला के सुन्दर निदर्शन हैं। वर्णनों और घटनाओं में संकेतात्मकता है। प्रस्तावना में 'स्वस्था भवन्तु कुरूराजसुताः सभृत्याः' (1–7) में स्वस्थाः कौरवों के स्वर्गस्थ होने अर्थात् उनकी मृत्यु का संकेत करता है। प्रत्येक पात्र अपनी स्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं। युधिष्ठिर, भीम, अश्वत्थामा और कर्ण की उक्तियों से उनके चरित्र का खाका खींचा जा सकता है। भीम के कथनों में धीरोद्धत नायक के सभी गुण प्राप्य हैं। उसकी भाषा में अक्खड़पन है।

इस नाटक में वीर अंगी रस है। श्रृंगार, रौद्र, करूण, वीभत्स आदि अंग रस हैं। नाटक का प्रारम्भ और अन्त वीर रस से है। वीर रस नाटक की अन्तरात्मा में व्याप्त है। भीम, दुर्योधन, अश्वत्थामा और कर्ण को वीर रस की सामग्री प्रदान करने का श्रेय है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वेणी संहार नाट्यकला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

महाकवि भवभूति की नाट्य रचनायें :

1. मालतीमाधव–

यह 10 अंकों का प्रकरण नाटक है। इसमें मालती और माधव तथा मकरन्द और मदयन्तिका के प्रणय और परिणय का वर्णन है। अंकानुसार कथा इस प्रकार है–

अंक 1–

माधव विदर्भराज के मंत्री देवराज का पुत्र है और मालती पद्मावती नरेश के मंत्री भूरिवसु की पुत्री है। दोनों मंत्रियों ने पहले से निर्णय कर रखा था कि वे अपने पुत्र और पुत्री का विवाह कर देंगे। नन्दन जो पद्मावती नरेश का नर्मसचिव है, मालती पर आसक्त है और राजा की सहायता से मालती से विवाह करना चाहता है। मदयन्तिका नन्दन की बहिन और मालती की सखी है। वह माधव के मित्र मकरन्द की प्रेमिका है। कामन्दकी दोनों मंत्रियों की मित्र है और चाहती है कि मालती माधव का विवाह निर्विघ्न हो जाये। कामन्दकी संन्यासिनी हो गई है और सौदामिनी तथा अवलोकिता दोनों उसकी शिष्याएँ हैं। मदनोद्यान में माधव और मालती एक दूसरे की देखकर मुग्ध हो जाते हैं। मकरन्द और

मदयन्तिका के प्रणय की भी सूचना मिलती है। नन्दन भी मालती से विवाह के लिये राजा से प्रार्थना करता है।

अंक 2–

राजा के आदेशानुसार भूरिवसु मालती का विवाह नन्दन से करने को उद्यत है। कामन्की मालती को तैयार कर लेती है कि वह माधव से गुप्त रूप से गन्धर्व विवाह कर ले।

अंक 3–

कामन्दकी के प्रयत्न से मालती और माधव शिवमन्दिर के कुंज में मिलते हैं। वहीं आई हुई मदयन्तिका पर शेर आक्रमण करता है, मकरन्द शेर को मार देता है, किन्तु घायल होकर अचेत हो जाता है।

अंक 4–

होश में आने पर मकरन्द मदयन्तिका को देखकर उस पर मुग्ध हो जाता है। नन्दन और मालती के विवाह का निर्णय हो गया है और तदर्थ मदयन्तिका को बुलाया जाता है। निराश माधव सिद्धि के लिये श्मशान घाट का आश्रय लेता है।

अंक 5–

अघोरघण्ट की शिष्य कपालकुण्डला बलि के लिये मालती को लाती है। वध्यस्थल पर संयोगवश माधव पहुंच जाता है कि अघोरघण्ट को मारकर मालती को बचाता है।

अंक 6–

कपालकुण्डला गुरू के वध की प्रतिज्ञा करती है। मालती और नन्दन के विवाह की तैयारी होती है। षड्यन्त्र द्वारा मालती वेषधारी मकरन्द से नन्दन का विवाह हो जाता है। उधर कामन्दकी मालती और माधव का गान्धर्व विवाह करा देती है।

अंक 7–

सुहागरात के समय मालती वेषधारी मकरन्द अपने पति नन्दन की ठुकाई करता है। उलाहना देने के लिये आई हुई

मदयन्तिका को मकरन्द अपनी वास्तविकता प्रकट करता है और दोनों मालती माधव से मिलने के लिये उद्यान की ओर जाते हैं।

अंक 8–

लड़की भगाने के आरोप में पुलिस वाले मकरन्द को पकड़ते हैं। सूचना पाकर माधव भी वहां आ जाता है और दोनों मिलकर सिपाहियों को परास्त करते हैं। उनकी वीरता से प्रसन्न होकर राजा उन्हें अभयदान देता है। लौटने पर उन्हें मालती गायब मिलती है। उसे कपालकुण्डला भगा ले गई है।

अंक 9–

सौदामिनी मालती को बचा लेती है और उसे माधव से मिला देती है।

अंक 10–

मालती के शोक में भूरिवसु, कामन्दकी, मदयन्तिका आदि आत्मघात के लिये तैयार हैं। मालती माधव के जीवित होने की सूचना देकर सौदामिनी और मकरन्द उन्हें बचाते हैं। राजा की आज्ञा से मकरन्द और मदयन्तिका का विवाह हो जाता है। कामन्दकी की योजनाएँ सफल होती है।

महावीरचरित :

इसमें सात अंकों में राम के विवाह से लेकर राम राज्याभिषेक तक रामायण की कथा वर्णित है–

अंक 1–

शिव धनुष तोड़कर राम सीता से विवाह करते हैं। इस पर रावण अत्यन्त क्रुद्ध है।

अंक 2–

रावध का मंत्री माल्यवान् राम क विरूद्ध परशुराम को उकसाता है।

अंक 3–

राम परशुराम के वाक् युद्ध और युद्ध का वर्णन है।

अंक 4–

परशुराम पराजित होते हैं। माल्यवान् के षड्यन्त्र से शूर्पणखा कैकेयी की दासी मन्थरा के रूप में कैकेयी का पत्र राम को देती है कि दशरथ के वरदान के अनुसार 14 वर्ष वन में रहे और भरत राजा हो।

अंक 5–

सीता हरण, जटायु रावण युद्ध, विभीषण का राम से मिलना, बालि वध और सुग्रीव मैत्री का वर्णन है।

अंक 6–

राम रावण युद्ध, रावण वध।

अंक 7

सीता की अग्निपरीक्षा, राम का अयोध्या आना और उनका राज्याभिषेक।

समीक्षा :

यह भवभूति की द्वितीय रचना है। इसमें भवभूति की कृत्रिम शैली में कुछ सुधार हुआ है। लम्बे गद्यों का प्रायः अभाव है। पद्यों में क्लिष्टबन्ध प्रायः पूर्ववत् है। मूलकथा में कई परिवर्तन किये गये हैं, जो कथानक के विकास के लिये उपयुक्त हैं। रावण की कूटनीति की असफलता का कारण राम की शक्ति नहीं, अपितु उनका भाग्य है। यद्यपि नाटक में गतिशीलता का अभाव हैं, तथापि कवित्व का उत्तम प्रदर्शन है। भाव और भाषा का समन्वय है। भावानुकूल सरल और क्लिष्ट भाषा का प्रयोग है। इसमें वीर रस मुख्य है, अतः ओज गुण प्रधान है। चरित्र चित्रण उच्चकोटि का नहीं है। इसमें उत्तमरामचरित के तुल्य मनोभावों का सूक्ष्म निरीक्षण नहीं है। कुछ प्रसंग आवश्यकता से अधिक लम्बे हो गये हैं, जो नाटक की गतिशीलता में अवरोध उत्पन्न करते हैं। इसमें रामकथा के अनुकूल अनुष्टुप् छन्दों का अधिक प्रयोग है। कहीं–कहीं पर सुन्दर सुभाषित और मधुर पदावली का सुन्दर समन्वय है। वर्णनों में अधिकांशतः गौड़ी रीति है।

राम के वधार्थ उद्यत क्रुद्ध परशुराम की सर्वोक्ति गौड़ी रीति का सुन्दर उदाहरण है।

कृत्तक्षत्रियकण्ठकन्दरसरत्कीलालनिर्वापित–
प्रत्युद्भूतशिखाकलापहुतभुग्झंकारिभिर्मार्गणैः।
एतद्धस्मकालरूद्रकवलव्यापारमभ्यस्यतु।
ब्रह्मस्तम्बनिकुंजपुञ्जिधनज्याघोषघोरं धनुः।। –(महा0 3–48)

मेरे धनुष की घोर ध्वनि ब्राह्माण्ड में व्याप्त, उसके बाणों ने क्षत्रियों के काटे गये कण्ठ से निकलती हुई रूधिर धारा से अपनी अग्नि शान्त की है। वह मेरा धनुष आज विश्व संहारक कालरूद्र का स्वरूप धारण करे।

प्रसाद गुण युक्त शैली में पुरूषार्थ के महत्त्व का मौलिक वर्णन देखिये–

जयो वा मृत्युर्वा भवतु नियतं में मतमिदं
रिपावौदासीन्यं मनसि न समाधानमयते।
अनारम्भे नित्या विपदितरथा चेदनियता
तदानीमुद्योगो ननु पुरूषधर्मो बहुमतः।। – (महा0 6–16)

जय या मृत्यु अवश्यंभावी हैं, अतः शत्रु के प्रति उदासीनता कोई समाधान नहीं है। कार्य न करने पर विपत्ति निश्चित है, कार्य करने पर वह अनिश्चित है, अतः मनुष्य का धर्म है कि वह पुरूषार्थ अवश्य करे।

कवि ने वीर रसयुक्त इस नाटक में अपने आपको वश्यवाक् कहा है और अपना लक्ष्य बताया है कि इसमें प्रसाद और ओज गुणों का समन्वय किया गया है तथा धर्म गाम्भीर्ययुक्त भारती वृत्ति अपनाई गई है।

प्रसन्नकर्कशा यत्र विपुलार्था च भारती।। (महा0 1–2)

अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीरः स्थितो रसः।। (महा0 1–3)

वश्यवाचः कवेर्वाक्यम्0।। (महा0 1–4)

उत्तररामचरित :

इसमें 7 अंकों में रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। इसमें सीता परित्याग, राम विलाप, लवकुश प्राप्ति और राम के द्वारा निर्दोष सीता के स्वीकार किये जाने का वर्णन है।

अंक 1

राम चित्रवीथी में सीता को विवाह से लेकर अग्निशुद्धि तक के चित्र दिखाते हैं। लोकापवाद के कारण वे सीता का परित्याग करते हैं।

अंक 2

वन में लव और कुश का जन्म, राम का अश्वमेघ यज्ञ, लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु का अश्वमेधीय अश्व का रक्षक होना, शम्बुक वध।

अंक 3

राम का पंचवटी में पुनरागमन, पूर्व घटनाओं को स्मरण कर मूर्छित होना और अदृश्य सीता द्वारा होश में लाया जाना, अश्वमेघ यज्ञ में सीता की प्रतिमा रखना।

अंक 4

वाल्मीकि के आश्रम में वसिष्ठ, अरून्धती, जनक, कौसल्या, आदि का आगमन, बालक लव का दर्शन, अश्वमेघीय अश्व को पकड़ने के लिये लव का प्रस्थान।

अंक 5

लव द्वारा जृमीक अस्त्र का प्रयोग, चन्द्रकेतु और लव का युद्धार्थ तैयार होना।

अंक 6

लव और चन्द्रकेतु का दिव्य अस्त्रों से घोर युद्ध, राम का आगमन, युद्ध बन्द होना, कुश का आगमन, राम का अनुमान कि लवकुश सीता के पुत्र हैं।

अंक 7

वाल्मीकि के आश्रम में गर्भनाटक का अभिनय, सीता को निर्दोष सिद्ध करना, लवकुश और सीता से राम का मिलन।

समीक्षा :

उत्तररामचरित भवभूति का अन्तिम और सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसकी कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा पर आश्रिम है। यह करूण शक्ति, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विवेचन और रस परिपाक चरम उत्कर्ष पर हैं। इसमें करूण रस का इतना प्रौढ़ वर्णन है कि इस नाटक के कारण ही भवभूति की कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त है।

भवभूति की नाट्यकला :

संस्कृत साहित्य में कालिदास के बाद भवभूति का ही नाम उत्कृष्ट नाटककार के रूप में लिया जाता है। उनके मालती माधव, महावीरचरित और उत्तररामचरित, इन तीन नाटकों में उत्तररामचरित ही सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। इसमें भवभूति अपने आपको 'परिणतप्रज्ञ कहते हैं। इसमें उनकी योग्यता और विद्वत्ता का चरम उत्कर्ष प्राप्त होता है। यह नाटक उनकी प्रतिभा का सर्वोत्तम निदर्शन है। भवभूति के नाटकों की मुख्य विशेषतायें हैं– घटना संयोजन में सौष्ठव, घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता, वर्णनों में स्वाभाविकता, चरित्र चित्रण में वैयक्तिकता, कथोपकथन में स्वाभाविकता, मनोहर शैली, देशकाल का विचार, कवित्व और रस परिपाक। भवभूति के जीवनकाल में ही उनके तीनों नाटकों का सफलता पूर्वक अभिनय हो चुका था।

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्व होते हैं–1. कथावस्तु, 2. नेता या पात्र, 3. रस। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार नाटक में 6 तत्व माने जाते हैं–1.कथावस्तु, 2. पात्र, 3. शैली, 4. कथोपकथन, 5. अन्वितियां, 6. उद्देश्य। भवभूति के नाटकों में उत्तररामचरित ही उनकी परिपक्व नाट्यकला का परिचायक है, अतः उसी के आधार पर उनकी नाट्यकला की समीक्षा प्रस्तुत है।

कथा वस्तु :

घटना संयोजन में सौष्ठव :

कथावस्तु की दृष्टि से उत्तररामचरित सर्वथा सफल नाटक है। इसमें घटनायें इतने सुन्दर ढंग से समन्वित और गुम्फित हैं कि उनमें पूर्ण स्वाभाविकता ज्ञात होती है। प्रथम अंक से सप्तम अंक तक की घटनायें परस्पर समन्वित हैं। प्रथम अंक की घटनाओं का सप्तम अंक की घटनाओं से साक्षात् सम्बन्ध है। यदि प्रथम अंक के चित्र दर्शन को हटा दिया जाये तो सप्तम अंक की घटनाएं अस्पष्ट और दुर्बोध हो जायेगी। सीता का अदृष्ट रूप में रहकर राम की अवस्था को देखना और दण्डकवन में राम की प्राण रक्षा करना। द्वितीय और तृतीय अंक को जोड़ता है। चतुर्थ अंक में जनक कौसल्या आदि की वाल्मीकि के आश्रम में उपस्थिति तथा लव का दर्शन अंक 4, 5, 6 को जोड़ता है। वाल्मीकि के आश्रम में सबकी उपस्थिति सातवें अंक के गर्भनाटक के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है।

मूलकथा में परिवर्तन :

भवभूति ने मूलकथा को अपनी योजना के अनुरूप परिवर्तित किया है। मूलकथा का उतना ही अंश लिया गया है, जितना अत्यावश्यक था। कवि ने उद्‌भुत रस का आश्रय लेकर नाटक को सुखान्त बनाया है।

चित्रदर्शन का महत्व :

प्रथम अंक में चित्रवीथी दर्शन कई दृष्टि से उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं–

1. राम खिन्नमता सीता का मनोरंजन करतें हैं।
2. चित्रदर्शन में रामायण में प्राप्य करूण रस प्रधान सभी दृश्यों और घटनाओं का संकलन है।
3. चित्रदर्शन से सीता को गंगास्नान और वनगमन का दोहद उत्पन्न होता है।
4. चित्रदर्शन सीता निर्वासन के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करता है।

5. इससे सीता की अग्नि परीक्षा और सीता विषयक लोकापवाद का ज्ञान होता है।

6. राम और सीता के पुत्रों को जृम्भक अस्त्र का वरदान सप्तम अंक में लवकुश को पहचानने में सहायक सिद्ध होता है।

7. राम गंगा और पृथ्वी से सीता की रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं। सप्तम अंक मे वे दोनों अपनी कार्यपूर्ति की सूचना से कृतकृत्यता प्रकट करती है।

8. इससे राम सीता के घनिष्ठ दाम्पत्य प्रेम का ज्ञान होता है।

9. चित्रदर्शन से रामसीता क अतीत की घटनाओं और उनके प्रिय सीनों का ज्ञान होता है।

10. चित्रदर्शन सीता परित्याग में परिणत होता है।

तृतीय अंक या छाया दृश्य का नाटकीय महत्व :

कुछ विद्वानों ने तृतीय अंक की नाटकीय उपयोगिता पर आपत्ति की है। उके मतानुसार यह अंक अनावश्यक और अनुपयुक्त है। इसके हटाने से भी कोई क्षति नहीं होती। यह विचार सुसंगत नहीं है। यह अंक नाटकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

1. सीता परित्याग के बाद घटित अनेक घटनाओं का ज्ञान होता है।

2. राम और सीता की मानसिक स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इससे प्राप्त होता है।

3. अदृश्य सीता का राम से वार्तालाप एक सुन्दर नाटकीय योजना है। भवभूति ने सम्भवतः छायानृत्यों के अनुकरण पर इसकी योजना बनाई है। इससे राम और सीता एक दूसरे की मनःस्थिति से अवगत होते हैं। यह दोनों के लिये लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

4. इसके कारण सीता का क्षोम शान्त होता है। यह राम सीता के पुनर्मिलन में सहायक है।

5. प्रत्यक्ष राम और अप्रत्यक्ष सीता का वार्तालाप करूण रस के प्रवाह में रोचकता उत्पन्न कर देता है।

6. इसी अंक में करूण रस का पूर्ण परिपाक हो पाया है।
7. दृश्य वैचित्र्य, मनोभावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, छायानाटक की सृष्टि, करूण रस का सतत प्रवाह, दाम्पत्य जीवन की झांकी, इनकी सुन्दर अभिरूचि के कारण तृतीय अंक नाटकीय और सामाजिक दोनों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सप्तम अंक में गर्भनाटक का महत्व :

गर्भनाटक भवभूति की मौलिक कल्पना है। यह कई दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है–

1. इससे सीता की पवित्रता सार्वभौम रूप से सिद्ध हो जाती है।
2. राम, सीता, लवकुश आदि का एकत्र मिलन होता है।
3. इसके द्वारा नाटक सुखान्त हो गया है।
4. पवित्र घोषित की गई सीता पाताल से प्रकट होती है और राम उन्हें स्वीकार करते हैं।
5. बालक लव और कुश का 12 वर्ष बाद माता सीता से मिलन होता है।

घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता :

उत्तररामचरित की प्रत्येक घटना सार्थक और सोद्देश्य है। घटनाओं और वर्ण्य विषयों का संकलन बहुत सावधानी से किया गया है। किसी एक भी घटना को हटा देने से कथानक में न्यूनता आ जायेगी। चित्रवीर्य दर्शन, छायादृश्य, जनक कौसल्या अरून्धती का संवाद, लव दर्शन, लव चन्द्रकेतु युद्ध, राम आगमन, राम का लवकुश से मिलन, गर्भनाटक के दृश्य अत्यन्त सार्थक हैं। ये सभी प्रसंग रस निष्पत्ति में सहायक है।

वर्णनों में स्वाभाविकता :

भवभूति के वर्णनों में पूर्ण स्वाभाविकता है। इन दृश्यों का वर्णन विशेष उल्लेखनीय है–चित्रवीथी, पंचवटी दर्शन, अश्वमेघीय, अश्व, लव चन्द्रकेतु युद्ध, राम लव संवाद, सीता का पाताल से प्रकट होना।

पात्रों का चरित्र चित्रण :

भवभूति असाधारण रूप से चरित्र चित्रण में पटु है। उनके पात्र सजीव एवं सक्रिय हैं। उनमें स्फूर्ति एवं भाव प्रकाशन क्षमता है, उत्साह है, संघर्ष करने की शक्ति है। वे भावहीन एवं हृदय शून्य नहीं हैं। उनमें मानवता के सभी गुण हैं। उनमें परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनशीलता है। भवभूति के मानवीय पात्रों को मानवीय स्तर पर तथा दैवी पात्रों को दैवी स्तर पर रखा है। इसके विपरीत व्यवहार भवभूति को रूचिकर नहीं है। अतः राम, सीता आदि की मानव पात्र हैं और वे मानवीय गुण दोषों से युक्त हैं।

भवभूति के प्रत्येक पात्र अपने आप में पूर्ण हैं। प्रत्येक पात्र किसी आदर्श को प्रस्तुत करता है। जैसे– राम कर्तव्यपालन का और सीता पतिव्रता स्त्री का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। भवभूति के पात्रों में गंभीरता और आत्म संयम है। उनमें तुच्छता, हीनता और उच्छ्खलता नहीं है। चुलबुलेपन की कमी है। गंभीरता गुण के कारण भवभूति के नाटकों में विदूषक का अभाव है। भवभूति के पात्रों में मौलिकता, गंभीरता, भावुकता, कर्तव्यनिष्ठा और आदर्शवादिता है, परन्तु मृच्छकटिक के पात्रों के तुल्य उनमें सजीवता और चुलबुलापन नहीं है।

कथोपकथन :

भवभूति के संवाद सुन्दर और रस निष्पत्ति में सहायक हैं। उनकी भाषा संयत और भाव प्रकाशन में समर्थ है। उनके पात्र हृदय खोलकर अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं। संक्षिप्त वर्णन भवभूति की प्रकृति के विरूद्ध है। वे संवादों में भी विस्तार के प्रेमी हैं, अतएव संवाद कहीं–कहीं अधिक लम्बे हो गये हैं। इससे कहीं–कहीं अरोचकता और गतिरोध उत्पन्न हो गये हैं। सभी आलोचकों ने इस पर आपत्ति की है। इसीलिये कतिपय आलोचकों ने इसे अभिनेय नाटक न मानकर पाठ्य नाटक माना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास– बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी

	ग्रन्थ	लेखक
2.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	वाचस्पति गैरोला
3.	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी
4.	संस्कृत साहित्य कोश	डॉ0 राजवंश सहाय
5.	महाभारत	वेदव्यास
6.	रामायण	वाल्मीकि
	कालिदास ग्रन्थावली	पं सीताराम चतुर्वेदी
7.	अभिनव नाट्यशास्त्र	पं सीताराम चतुर्वेदी
8.	श्रगवेदादिभाव्यभूमिका	दयानन्द सरस्वती
9.	काव्यालंकार	भामह
10.	काव्य प्रकाश	मम्मट
11.	ध्वन्यालोक	आननदवर्धक
12.	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि
13.	साहित्य दर्पण	विश्वनाथ
14.	काव्यालंकार सूत्र	वामन
15.	वक्रोक्तिजीवित	कुन्तक
16.	औचित्यविचार चर्चा	क्षेमेन्द्र
17.	केम्ब्रिज हिस्ट्रीज ऑफ इण्डिया	रैप्सन
18.	चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन	छविनाथ त्रिपाठी
19.	वैदिक साहित्य और संस्कृति	वाचस्पति गैरोला
20	संस्कृत के महाकवि और काव्य	डॉ0 रामजी उपाध्याय
21.	संस्कृत नाटक समीक्षा	प्रो0 इन्द्रपाल सिंह
22.	महाकवि भवभूति	डॉ0 गंगा सागर राय
23.	महाकवि माघ	डॉ0 मममोहन लाल
24.	महाकवि कालिदास	उमाशंकर त्रिपाठी
25.	भारतीय प्रज्ञा	मोनियर विलियम्स अनु0 रामकुमार राय

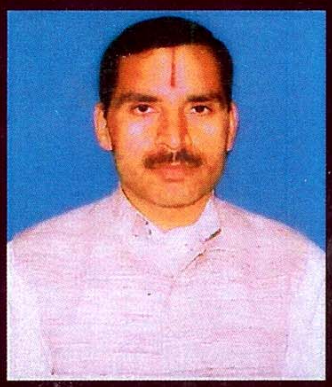

डॉ० तुलसीदास परौहा

सहायक प्राध्यापक : संस्कृत विभाग
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ.प्र.)

जन्म : डॉ० परौहा का जन्म मध्यप्रदेश के कटनी जिले में कैमूर पर्वत श्रृंखला की उपत्यका में अवस्थित बम्हौरी नामक ग्राम में १२ जून १९७१ ई. में हुआ।

शिक्षा : प्रथम कक्षा से स्नातकोत्तरपर्यन्त सभी परीक्षायें विशेषांको सहित प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण डॉ. परौहा ने अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा म.प्र. से आचार्य (नव्य व्याकरण) एवं एम.ए. (संस्कृत साहित्य) की उपाधि तथा महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट, जिला-सतना मध्य प्रदेश से पी.एच.डी. की उपाधि अर्जित की।

रचनायें :

- सङ्कर्षणचरितामृतम् (संस्कृतखण्डकाव्य)
- गीतभागीरथी (संस्कृतगीतकाव्य संग्रह)
- गीतमंदाकिनी (हिन्दीगीतकाव्यसंग्रह)
- श्रीसीताराममन्दिरविभवः (संस्कृतगीतकाव्य)
- श्रीचित्रकूटस्तवराजः (संस्कृतस्तोत्रकाव्य)
- जगद्गुरुस्वामीरामभद्राचार्य (हिन्दी शोधग्रन्थ)
- भाषा विज्ञान
- कालिदास
- संस्कृत काव्य परम्परा
- इतिहास पुराणों का परिचय